भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

1939 में स्थापित भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता में, शिक्षा के माध्यम से अभिवृद्धि करना है, जिसे यह निरन्तर एवं आजीवन प्रक्रिया के रूप में देखता है। संघ प्रौढ़ शिक्षा को एक प्रक्रिया, कार्यक्रम और आन्दोलन के रूप में गतिशील बनाने की दिशा में प्रतिबद्ध है।

संघ प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार में कार्यरत स्वंयसेवी संगठनों, विश्वविद्यालयों, शासकीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्यकलापों से समन्वय करता है। संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों का आयोजन और प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न आयामों पर निरंतर सर्वेक्षण तथा शोध के साथ, संघ अपने सदस्यों की प्रौढ़ शिक्षा विषयक जानकारी में नवीनता एवं प्रखरता बनाए रखने के लिए समूचे विश्व में अद्यतन विचार और अनुभव प्रस्तुत करने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्रों में अनुसंधान हेतु विभिन्न प्रयोगात्मक परियोजनाएं भी संचालित करता है। अपनी नीतियों के अनुसरण में संघ ने 'नेहरू साक्षरता पुरस्कार' एवं महिलाओं में निरक्षरता निवारण कार्य हेतु 'टैगोर साक्षरता पुरस्कार' की स्थापना की है। डा. जाकिर हुसैन स्मृति व्याख्यान प्रतिवर्ष किसी मूर्धन्य शिक्षाविद् द्वारा दिया जाता है। संघ हिन्दी एवं अंग्रेजी शोध कार्य के लिए डा. मोहन सिंह मेहता फेलोशिप भी प्रदान करता है।

संघ का अमरनाथ झा पुस्तकालय प्रौढ़, सतत् और जनसंख्या शिक्षा की सन्दर्भ सामग्री की दृष्टि से देश में अद्वितीय है। विविध सन्दर्भ पुस्तकों के संकलन के अतिरिक्त देश और विदेश से प्रकाशित प्रौढ़ शिक्षा संबंधी पत्र–पत्रिकाएं, सूचना एवं संदर्भ सामग्री भी इसमें उपलब्ध है। संघ, नेशनल इन्फार्मेटिक सेण्टर इंडिया इण्टरनेशनल सेंटर द्वारा प्रायोजित डेलनेट से भी सम्बद्ध है। संघ द्वारा अभी हाल में प्रौढ़ एवं जीवनपर्यन्त अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान (इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एडल्ट एंड लाईफलॉंग एजूकेशन) की स्थापना भी कर दी गई है।

संघ प्रौढ़ शिक्षा विषय पर अनेक पुस्तकें व पत्रिकाएं प्रकाशित करता हैं, जो कि मुख्यतः प्रौढ़ शिक्षा कर्मियों और नवसाक्षरों के लिए है। संघ 'इण्टरनेशनल फेडरेशन आफ वर्कर्स एजूकेशनल एसोसिएशन्स' एवं 'एशियन साउथ पेसेफिक ब्यूरो आफ एडल्ट एजूकेशन' एवं 'इण्टरनेशनल कौंसिल आफ एडल्ट एजूकेशन' से भी सम्बद्ध है। संघ की सदस्यता उन सभी व्यक्तियों एवं संस्थाओं के लिए खुली है जो इसके आदर्शों एवं लक्ष्यों में विश्वास रखते हैं।

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

17–बी इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, महात्मा गांधी मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाषः 011–23379282, 23378436, 23379306
फैक्सः 011–23378206, ई–मेलः proudhshiksha@gmail.com
directoriaea@gmail.com
website: www.iaea-india.org; www.iiale.org

प्रौढ़ शिक्षा

जून 2010
वर्ष 53 अंक–11

सम्पादक मण्डल

संरक्षक
प्रो. भवानी शंकर गर्ग

अध्यक्ष
कैलाश चौधरी

इन्दिरा पुरोहित
ए.एच.खान
प्रफुल्ल नागर
के.आर. सुशीले गौडा
डा. विद्याविन्दु सिंह
डा. मदन सिंह

सहायक सम्पादक
बी. संजय

टंकण एवं रूपसज्जा
कृष्ण सिंह

इस अंक में

सम्पादकीय 2

महिला सशक्तीकरण–पाठ्य पुस्तकों में नारी परिदृश्य
–महेन्द्र कुमार वर्मा 3

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन
– रमा त्यागी एवं एन रोहेन मीतै 9

21वीं शताब्दी में स्वैच्छिकवाद ही युवा सशक्तीकरण का सर्वश्रेष्ठ विकल्प
– सरिता पंवार 16

विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य : एक चुनौती
–जितेन्द्र कुमार पाटीदार, कमल किशोर यादव 24

साक्षर भारत
– दुष्यंत कुमार सोनी 34

असहमति की शिकार शिक्षा
–बी. संजय 35

Rise and Fall of NGOs
- K.D. Gangrade 38

मूल्यः 100 रूपये वार्षिक

पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचार उनके वैयक्तिक विचार हैं जिनसे संघ एवं सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है ।

सम्पादकीय

जन सशक्तीकरण के मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करने की कोशिश

सन् 1987 में राजस्थान के देवडुंगी गांव में जब मजदूर किसान शक्ति संगठन द्वारा सूचना के अधिकार के आरम्भिक संघर्ष की शुरूआत हुई थी तब भी यह अधिकार विश्व के कई अन्य देशों के लिए नई बात नहीं थी। अमेरिका, इंग्लैंड, जापान, यूरोपियन यूनियन, ब्राज़ील, आस्ट्रेलिया समेत विश्व के 193 देशों में से तकरीबन 85 देशों में इस अधिकार हेतु कानून किसी न किसी रूप में मौजूद था। फिर भी यह संघर्ष हमारे देश के लिए एक नए युग की शुरूआत का ऐलान था। सन् 1987 से लेकर सन् 2005 तक सूचना के अधिकार की लड़ाई विभिन्न गैर सरकारी संस्थाओं, राजनैतिक दलों एवं लोकतंत्र तथा जनता के सशक्तीकरण के समर्थकों द्वारा लगातार लड़ी गई। वस्तुतः यह लड़ाई भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान सन् 1843 और बाद में सन् 1923 में लागू ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट के चक्र को तोड़ते हुए प्रशासन में पारदर्शिता लाने तथा अन्ततः आम जनता के सशक्तीकरण की लड़ाई थी।

यह अपार हर्ष का विषय था कि इस लड़ाई में जनता की जीत हुई और 15 जून, 2005 को भारतीय संसद ने सूचना के अधिकार विधेयक को सर्वसम्मति से अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। 21 जून, 2005 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित होने के साथ ही 'सूचना का अधिकार एक्ट 2005' देश में लागू हो गया।

सन् 2005 से अब तक इस एक्ट के कारण जनता में आई जागृति का अनुमान इस बात से कोई भी सहज ही लगा सकता है कि इस अवधि के दौरान विरले ही कोई ऐसी सरकारी उपलब्धियों का दस्तावेज प्रकाशित हुआ होगा जिसमें सूचना के अधिकार का जिक्र वरीयता के साथ न किया गया हो। जन आंदोलनों के लिए यह अधिकार तो नब्ज सरीखा है। पहली बार ही तो ऐसा हो रहा है कि आम आदमी जो वस्तुतः इस देश का अधिकार प्राप्त मालिक है नौकरशाहों से तमाम गतिविधियों की जानकारी तथा खर्चों का हिसाब किताब मांग रहा है। इस अधिकार के उपयोग से लाभान्वित होने वालों में गांव के एक गरीब आदमी से लेकर उच्च पदस्थ अधिकारी एवं राजनैतिक नेता सभी शामिल हैं।

जहां एक ओर इससे लाभान्वित होने वालों की कतार दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है वहीं जनता की सम्पति पर कुंडली मारे बैठ हुए उसका दुरूपयोग कर रहे प्रशासकों/अधिकारियों की नींद उड़ी हुई है। स्वाभाविक ही वे चाहते हैं किसी न किसी रूप में इस अधिकार को कमजोर किया जाए और इस हेतु वे निरन्तर सरकार पर दबाव भी बना रहे हैं। सूचना अधिकार कार्यकर्ता सुभाष चन्द्र अग्रवाल द्वारा मांगें एक सवाल के जवाब में कार्मिक लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय ने कहा है कि सरकार शीघ्र ही सूचना अधिकार विधेयक में संशोधन करने वाली है। इस मंत्रालय की माने तो सरकार सर्वोच्च न्यायाधीश के कार्यालय को इस परिधि से बाहर रखना चाहती है। साथ ही यह भी चाहती है कि कोई गैर सरकारी संस्थान किसी सूचना को मांगने की अधिकारी है या नहीं यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इसके पीछे तर्क यह है कि सूचना के अधिकार के नाम पर लोग सरकारी कार्य में सुगमता से अवरोध उत्पन्न कर रहे हैं। जानकारों का मानना है कि इस पहल की ओट में सरकार फिर से सूचना मांगने के अधिकार के रास्ते रोकना चाहती है।

गौरतलब है कि मौजूदा सरकार ने जिस राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की घोषणा की है उसके 15 सदस्यों में अरूणा राय, डॉ. जिनड्रेज तथा हर्ष मंदर भी शामिल हैं जो इस देश में सूचना के अधिकार के संघर्ष के पुरोधा माने जाते हैं। ऐसे में यह घोर आश्चर्य का विषय होगा कि जनतंत्र तथा जनसशक्तीकरण विरोधी ताकतें सूचना के अधिकार कानून को कमजोर करने में किसी भी तरह से सफल हो जाएं।

बी.संजय

महिला सशक्तीकरण–पाठ्य पुस्तकों में नारी परिदृश्य

–महेन्द्र कुमार वर्मा

साहित्य से समाज का स्वरूप परिलक्षित होता है। मनुस्मृति की यह उक्ति ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' हमारे सामने भारतीय समाज के उस पुरातन चिन्तन स्वरूप को उपस्थित कर देती है जिसने अर्द्धनारीश्वर की कल्पना के साथ अपने किसलयों को अवचेतन जगत में खोला है। परन्तु यदि हम गहराई से अवलोकन करें तो इस सुखद चिन्तन और विचार की डोर बहुत कमजोर नजर आती है। वास्तविकता यह है कि भारतीय नारी सदा से ही भारतीय समाज की महिमामंडित स्वरूप के झीने आवरण के नीचे अपने दैन्य और हीनता को ढांकने की असफल चेष्टा करती रही है। सामान्यतया प्रारम्भिक वैदिक काल में स्त्रियों को समाज में सम्मान का स्थान प्राप्त था तथा प्रत्येक प्रकार के धार्मिक कार्यों में उनकी सहभागिता अनिवार्य मानी जाती थी। स्त्रियाँ माँ एवं देवी की रूप एवं समाज की सादर पूज्य थीं। उत्तर वैदिक काल से लेकर आज तक पुरूष समाज ने अनेकानेक उपक्रमों से नारी को समाज में दूसरे पायदान पर ढकेलने का कुत्सित प्रयास किया है। उत्तर वैदिक काल में मंत्रों के शुद्ध उच्चारण न कर पाने के बहाने वेदों के अध्ययन/विद्यार्जन से उन्हें दूर रखा गया। बाल विवाह पर बल दिया जाने लगा। स्त्री को लक्ष्मी का रूप बनाकर पुरूषों के चरणों में उसके स्वर्ग की कल्पना की गयी। बौद्धकाल में तो नारी को समस्त पापों की जननी तक भी कह दिया गया तथा अधिकांश समय उन्हें शिक्षा से दूर रखा गया। मुस्लिम काल में स्त्री को मुख्यतः भोग की दृष्टि से ही देखा गया। वास्तव में नारी के सम्मानित एवं पूज्य होने की मान्यताएं सर्वथा निराधार नहीं है लेकिन इनका आधार बहुत क्षीण है। वस्तुतः उत्तर वैदिक काल से लेकर आज के बाजार युग तक पुरूष शासित समाज में नारी के दो ही रूप वास्तविक व सत्य रहे हैं, भोग्या एवं दासी। अन्तर मात्र इतना है कि पहले धार्मिक एवं सामाजिक बाध्यताओं के नाम पर स्त्री का शोषण हो रहा था आज आर्थिक स्वाधीनता का सपना दिखाकर।

आजादी के पूर्व कुछ समाज सेवकों ने नारी को समाज में उचित स्थान दिलाने हेतु निश्चय ही सार्थक प्रयास किये। आजादी के उपरान्त संविधान में स्त्रियों को समाज में समान दर्जा दिये जाने के पूर्ण प्रयास किये गये हैं। संविधान एवं राष्ट्रीय विचारों को ध्यान में रखकर ही पाठ्य पुस्तकों की रचना की जाती है। पुस्तकें, विचारों के प्रसार का प्रमुख साधन हैं। इस दृष्टि से पाठ्य पुस्तकें और भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं क्योंकि इसका विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि नारी को पुरूषों के मुकाबले पाठ्य पुस्तकों में किस

रूप में प्रस्तुत किया गया है अर्थात् पाठ्य पुस्तकों में नारी परिदृश्य की स्थिति पुरूषों के संदर्भ में कैसी है।

यह अध्ययन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित कक्षा–6 की हिन्दी पाठ्य पुस्तक बसन्त भाग–1 पर सम्पन्न किया गया है। प्रस्तुत पाठ्य पुस्तक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पर आधारित है। इस पुस्तक का प्रकाशन परिषद् ने प्रथम संस्करण के रूप में वर्ष 2006 में किया था। इसी पुस्तक के विषय वस्तु का विश्लेषणात्मक अध्ययन नारी परिदृश्य को ध्यान में रखकर किया गया है। इस अध्ययन में यह जांचने का प्रयास किया गया है कि उक्त पाठ्य पुस्तक में नारी को पुरूषों के मुकाबले किस रूप में तथा किस सीमा तक चित्रण किया गया है। इस अध्ययन में नारी की उपेक्षा को भी देखने का प्रयास किया गया है। पुस्तक के नारी परिदृश्य की तुलना इसी संस्था द्वारा पूर्व में प्रकाशित (2002) हिन्दी की कक्षा 6 की पाठ्य पुस्तक भारती भाग–1 से की गयी है। प्रस्तुत अध्ययन नारी के एक सीमित परिदृश्य पर ही केन्द्रित है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. पाठ्यपुस्तक में विद्यमान विभिन्न पात्रों में नारी और पुरूष पात्रों की आवृत्ति, प्रतिशत एवं अनुपात ज्ञात करना।
2. पाठ्यपुस्तक में नारी एवं पुरूष रचनाकारों की आवृत्ति, प्रतिशत एवं अनुपात ज्ञात करना।
3. पाठ्यपुस्तक में नारी एंव पुरूष पर केन्द्रित पाठों की आवृत्ति, प्रतिशत एवं अनुपात ज्ञात करना।
4. पाठ्यपुस्तक में विद्यमान नारी पुरूष चित्रों की आवृत्ति, प्रतिशत एवं अनुपात ज्ञात करना।
5. बसन्त भाग–1 में वर्णित नारी परिदृश्य के चार पक्षों क्रमशः पात्रों, रचनाकारों, नारी केन्द्रित पाठों एवं नारी चित्रों के प्रतिशत की तुलना भारती भाग–1 में उपलब्ध नारी परिदृश्य के इन पक्षों से करना।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक प्रकृति की है। इसे संपन्न करने के लिए विषय वस्तु विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग किया गया है। विषय वस्तु विश्लेषण का तात्पर्य उस प्रविधि से है जो किसी दिये गये अथवा अभिलेख में व्याप्त विशिष्ट प्रकरणों, अभिवृत्तियों अथवा संदर्भों की सापेक्ष मात्रा का निर्धारण व मूल्यांकन करती है। समष्टि के रूप में कक्षा–6 की हिन्दी पाठ्यपुस्तक बसन्त भाग–1 जिसका प्रकाशन एन0सी0ई0आर0टी0 से वर्ष 2006 में किया गया है, के विषयवस्तु में प्रत्यक्षतः पठ्नीय अंशों को शामिल किया गया है।

नारी के चित्रण से संबन्धित चार प्रवर्गों जो कि अध्ययन के चार उद्देश्यों पर आधारित हैं, के आधार पर पाठ्यपुस्तक के विषयवस्तु की जांच करना अध्ययन का एक प्रमुख उदृदेश्य था। अध्ययन

निगमनिक विषयवस्तु विश्लेषण द्वारा किया गया, क्योंकि यहाँ विश्लेषण प्रवर्ग पूर्व निर्धारित थे। लक्ष्यगत 4 उद्देश्यों का स्वरूप संख्यात्मक था तथा संख्या पृथक–पृथक ज्ञात कर ली गयी। नारी के इन लक्षणों की आवृत्ति का अनुपात संगत चित्रण करने के लिए इन प्रवर्गों की विषयवस्तु में बारम्बारता पुरूष वर्ग के संदर्भ में ज्ञात की गयी। आकड़ों के विश्लेषण हेतु अलग–अलग प्रवर्गों की आवृत्ति और प्रतिशत संबंधी गणनाओं का प्रयोग किया गया है।

उद्देश्य पॉच में इन चारों प्रवर्गों की तुलना एन0सी0ई0आर0टी0 द्वारा प्रकाशित कक्षा–6 की हिन्दी पाठ्य पुस्तक भारती भाग–1 की वसंत भाग 1 के साथ तुलना की गई है।

आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण, विवेचन एवं निष्कर्ष

निर्धारित उद्देश्यों के क्रम में नारी परिदृश्य से संबन्धित आकड़े जिनका विश्लेषण आवृत्ति, प्रतिशत एवं अनुपात के रूप में किया गया है, नीचे सारिणी में प्रस्तुत किये गये हैं। प्रतिशत एवं अनुपात के आधार पर ही परिणामों की विवेचना की गयी है एवं निष्कर्ष निकाला गया है।

उद्देश्य –1 हिन्दी पाठ्य पुस्तक बसंत भाग एक में विद्यमान नारी एवं पुरूष पात्रों की आवृत्ति प्रतिशत एवं अनुपात ज्ञात करना।

सारिणी–1 नारी एवं पुरूष पात्रों की आवृत्ति प्रतिशत एवं अनुपात

पुस्तक का नाम	कुल पुरूष व नारी पात्र	पुरूषों की		नारी की		नारी व पुरूष अनुपात
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
वसन्त भाग–1	24	15	62.5	9	37.5	1:166

सारिणी 1 में स्त्री व पुरूष पात्रों की कुल संख्या 24 पायी गयी जिसमें 15 पात्र पुरूषों के तथा 9 पात्र नारियों के थे। प्रतिशत के रूप में नारी के 37.5 प्रतिशत के मुकाबले पुरूष का प्रतिशत 62.5 प्राप्त हुआ। नारी एवं पुरूष पात्रों का अनुपात 1:1.66 है। दोनों के अनुपात में यद्यपि भारी अन्तर है लेकिन इसके बावजूद नारी पात्रों की स्थिति को उपेक्षापूर्ण नहीं कहा जा सकता।

उद्देश्य –2 हिन्दी पाठ्यपुस्तक बसंत भाग एक में नारी एवं पुरूष रचनाकारों की आवृत्ति, प्रतिशत एवं अनुपात।

सारिणी–2 नारी एवं पुरूष रचनाकारों की संख्या प्रतिशत एवं अनुपात

पुस्तक का नाम	कुल रचनाकार	नारी रचनाकार आवृत्ति	प्रतिशत	पुरूष रचनाकार आवृत्ति	प्रतिशत	नारी, पुरूष रचनाकारों का अनुपात
वसन्त भाग–1	17	4	23.5	13	36.5	1:3.2

सारिणी–2 से स्पष्ट है कि कुल 17 रचनाकारों में पुरूषों के 13 के मुकाबले नारी को मात्र 4 स्थान प्राप्त हुए हैं जो कि 23.5 प्रतिशत है। ये पुरूषों के अनुपात में एक तिहाई से भी कम है। यहां नारी रचनाकारों से भेदभाव स्पष्ट प्रतीत होती है। कुछ और महिला रचनाकारों को स्थान दिया जाना चाहिए था।

उद्देश्य–3 पाठ्यपुस्तक में नारी व पुरूष केन्द्रित पाठों की आवृत्ति, प्रतिशत एवं अनुपात ज्ञात करना।

सारिणी– 3 नारी व पुरूष केन्द्रित पाठों की आवृत्ति, एवं अनुपात

पुस्तक का नाम	नारी व पुरूष केन्द्रित पाठों की संख्या	नारी केन्द्रित पाठ आवृत्ति	प्रतिशत	पुरूष केन्द्रित पाठ आवृत्ति	प्रतिशत	नारी पुरूष अनुपात
वसन्त भाग–1	9	5	55.5	4	44.4	1:1.25

सारिणी–3 से स्पष्ट है कि पुरूष तथा नारी केन्द्रित पाठों की संख्या–क्रमशः 5 एवं 4 है जिसका अनुपात 1:125 है। यहाँ नारी केन्द्रित पाठों की संख्या पुरूषों के लगभग करीब है। यहां स्पष्ट रूप से नारी को समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य–4 पाठ्यपुस्तक में विद्यमान नारी पुरूष चित्रों की आवृत्ति एवं अनुपात ज्ञात करना।

सारिणी–4 नारी व पुरूष चित्रों की आवृत्ति, प्रतिशत एवं अनुपात

पुस्तक का नाम	पुरूष एवं नारी चित्रों की संख्या	नारी चित्रों की आवृत्ति	प्रतिशत	पुरूष चित्रों की आवृत्ति	प्रतिशत	नारी व पुरूष चित्रों का अनुपात
वसन्त भाग–1	73	30	41	43	51	1:1.44

उपर्युक्त सारिणी का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि कुल 73 चित्रों में से नारी के 30 चित्रों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है जिसका नारी व पुरूष चित्र अनुपात 1:1.44 है। यहाँ नारी चित्रों का प्रतिनिधित्व पुरूष चित्रों की अपेक्षा काफी कम प्रतीत हो रहा है जिसमें वृद्धि अपेक्षित है।

उद्देश्य–5 बसन्त भाग–1 में वर्णित नारी परिदृश्य के चार पक्षों क्रमशः पात्रों, रचनाकारों, नारी केन्द्रित पाठों एवं नारी चित्रों के प्रतिशत की तुलना भारती भाग–1 में उपलब्ध नारी परिदृश्य के इन पक्षों से करना।

सारिणी–5 वसन्त भाग–1 तथा भारती भाग–1 के 4 प्रवर्गों की प्रतिशत तुलनात्मक स्थिति

प्रवर्ग संख्या	नारी परिदृश्य वर्ग	भारती भाग–1	वसन्त भाग–1	तुलनात्मक वृद्धि
1	नारी पात्र	14.93	37.5	22.57
2	नारी रचनाकार	4.54	23.5	18.96
3	नारी केन्द्रित पाठ	28.4	44.5	16.1
4	नारी चित्र	25.0	41.0	16.0

उपरोक्त सारिणी का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि वर्ष 2002 में प्रकाशित हिन्दी पाठ्यपुस्तक भारती भाग–1 की अपेक्षा 2006 में प्रकाशित हिन्दी पाठ्य पुस्तक वसन्त भाग–1 में अध्ययन के चारों प्रवर्गों में नारी के प्रतिशत में तुलनात्मक वृद्धि हुई है। यह वृद्धि नारी पात्रों में 22.5 प्रतिशत, रचनाकारों में 18.96 प्रतिशत, नारी केन्द्रित पाठों में 16.1 प्रतिशत तथा नारी चित्रों के संदर्भ में 16 प्रतिशत की देखी गयी है। यह अत्यंत उत्साहजनक स्थिति है। संभवतः पुस्तक के प्रकाशन मण्डल का ध्यान लिंग भेद को दूर करने पर भी केन्द्रित किया गया है। भविष्य में नारी के प्रतिनिधित्व की स्थिति प्रत्येक पक्ष में पुरूषों के समान पहुंचा दी जाय तो यह अत्यंत सराहनीय कदम होगा। साथ ही साथ महिला सशक्तीकरण के लिए महत्त्वपूर्ण येागदान भी माना जायेगा।

शैक्षिक निहितार्थ

1. अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट हो रहा है कि संबन्धित पाठ्य पुस्तक में नारी का प्रतिनिधित्व वर्णित चारों प्रवर्गों में पुरूषों की अपेक्षा कम मात्रा में किया गया है। इस पाठ पुस्तक का अध्ययन समस्त छात्र–छात्राओं द्वारा किया जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों वर्गों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान कर लैंगिक भेद–भाव दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

2. वर्ष 2002 की पाठ्य पुस्तक भारती भाग–1 की अपेक्षा वर्ष 2006 में प्रकाशित पाठ्य पुस्तक बसन्त भाग–1 में नारी के प्रतिनिधित्व में काफी सुधार आया है। यह स्थिति संतोषप्रद है। भविष्य में पाठ्यक्रम में महान नारियों को स्थान प्रदान कर पुरूषों के समान स्तर पर लाना

उचित होगा। इससे नारी में चेतना आयेगी तथा उनके अन्दर स्वाभिमान आत्मविश्वास उत्पन्न होगा तथा वे दबी कुचली मानसिकता से बाहर आ सकेंगी जिसकी राष्ट्र को आवश्यकता है।

सन्दर्भः

1. गाँधी, म0(2003) आजादी और औरत,संकलन व सम्पादन प्रशान्त कुमार, वाराणसी, सर्वसेवा संघ।

2. कुमारी, ऊषा (1990) माध्यमिक स्तर की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों में संवैधानिक मूल्य, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, वाराणसी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

3. रा0शै0अ0प्र0प0 (2002) भारती भाग–1 नई दिल्ली, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद्।

4. रा0शै0अ0प्र0प0 (2007) वसन्त भाग–1 नई दिल्ली, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद्।

5. वर्मा म0कु0(2010) उच्च प्राथमिक कक्षाओं की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों में नारी की स्थिति भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका 29 (1)।

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

रमा त्यागी एवं एन रोहेन मीतै

सारांश

सामाजिक परिवर्तन किसी भी समाज में वातावरणीय बदलावों के कारण परिलाक्षित होते हैं और शिक्षा इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी देश अथवा समाज में उसके प्रगति के भौतिक साधनों के साथ मानव संसाधन और उनका दृष्टिकोण बहुत ही अहम भूमिका रखते हैं चूंकी सामाजिक परिवर्तन होने के कारण मानव को समायोजन की प्रक्रिया से गुजरना ही पड़ता है। विद्यार्थी समाज में हो रहे परिवर्तनों के साथ कैसे समायोजित करते हैं इस दृष्टि से यह अध्ययन आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है जिससे उन्हें बेहतर समायोजन के लिए तैयार किया जा सके तथा उनमें सामाजिक परिवर्तनों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जा सके।

प्रस्तावना

शिक्षा मानव विकास की प्रक्रिया है तथा इसे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन के शस्त्र के रुप में प्रयोग किया जा सकता है। बालकों के समाजीकरण से लेकर ज्ञान और व्यक्तित्व विकास के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की सदैव अहम भूमिका रही है। प्राचीन काल में भी सामाजिक परिवर्तन के महत्व को स्वीकार किया गया था। किसी भी समाज के किशोर विद्यार्थियों के मन मस्तिष्क पर सकारात्मक विचारों के प्रभाव से उनकी ऊर्जा को सामाजिक परिवर्तन के कार्य में लगाया जा सकता है। इससे मानव सामज और देश की उन्नति में भी सहायता मिलेगी। सामाजिक परिवर्तन की सबसे बड़ी जिम्मेदारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में संचित ऊर्जापुंज को सही दिशा प्रदान करने से ही पूरी हो सकती है। इसलिए उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

पन्डित, पी. विजयलक्ष्मी, (1994) ने महिला सशक्तीकरण में दूरवर्ती शिक्षा के भूमिका पर आधारित अपने अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर खुला विश्वविद्यालय महिलाओं की आवश्यकता के अनुसार अपने पाठ्यक्रमों में विविधता ला सकता है। साथ ही ज्यादातर महिलाओं ने स्नातक स्तर के पाठ्यक्रमों में प्रवेश लिया इससे स्पष्ट है कि वर्तमान में महिलाओं के लिए उपाधि सम्माननीय योग्यता हो गयी है। इसी क्रम में गुप्ता, जे.एल., (1994) ने निर्धनों की सामाजिक एवं

आर्थिक परिस्थितियों पर साक्षरता का प्रभाव, अध्ययन में पाया कि राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में भागीदारी के बाद से अधिकांश प्रतिभागी हिन्दी लिखना सीख गये हैं और अग्रेंजी भाषा के साथ साथ गणितीय क्षमता में भी दक्ष हो गए हैं। साक्षरता के कारण प्रतिभागियों की सामाजिक सहभागिता, पेशेगत व्यवहार, सामाजिक सम्पर्क पर सकारात्मक प्रभाव पड़ने के साथ उनकी आय में भी वृद्धि हुई है।

वर्तमान में किशारों में जो व्यवहार सम्बन्धी बदलाव परिलक्षित हो रहे हैं तथा वातावरण या समाज में जो परिवर्तन आ रहे हैं, उसे ध्यान में रखते हुए किशोर विद्यार्थियों की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन आवश्यक है।

अध्ययन के उददे्श्य

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
3. शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है :

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

2. शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

3. शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

समस्या कथन

"उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन"

शोध प्रविधि

यह अध्ययन समूह पर आधारित है। अतः सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया है। यहां एस. पी. अहलुवालिया और ए. के. कालिया द्वारा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में सामाजिक

परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करने के लिए प्रतिपादित 'Standerized Comprehensive Modernization Inventory (AKCMI)' का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए न्यादर्श का वितरण सारिणी–01में दिया गया है।

सारिणी – 01, न्यादर्श का वितरण

निजी उच्चतर	छात्र	30
माध्यमिक विद्यालय	छात्राएं	30
शासकीय उच्चतर	छात्र	30
माध्यमिक विद्यालय	छात्राएं	30
योग		120

अध्ययन की परिसीमाएं

1. वर्तमान अध्ययन को ग्वालियर शहर के विद्यालयों तक परिसीमित किया गया है।
2. अध्ययन को निजी एवं शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों तक परिसीमित किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण

परिकल्पना –01 'उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'

सारिणी – 02

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं में सामाजिक परिवर्तन का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–वैल्यू के आधार पर तुलनात्मक विश्लेषण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–वैल्यू
कुल छात्र	60	172.16	11.22	0.930′
कुल छात्राएं	60	174	10.44	

* not significant df = (N1-1) + (N2-1) = (60-1) + (60-1) = 59+59 = 118

स्वतन्त्रता अंश 118 पर एवं 0.05 एवं 0.01 स्तर पर 't' का प्रामाणिक मान क्रमशः 1.98 एवं

2.62 होना चाहिए। जबकि 't' का गणनात्मक मान 0.930 है, जो 't' के प्रामाणिक मान से कम है। अतः अन्तर सार्थक नहीं है तथा यह शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है। अर्थात् ''उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं में सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं है।''

ग्राफ–01

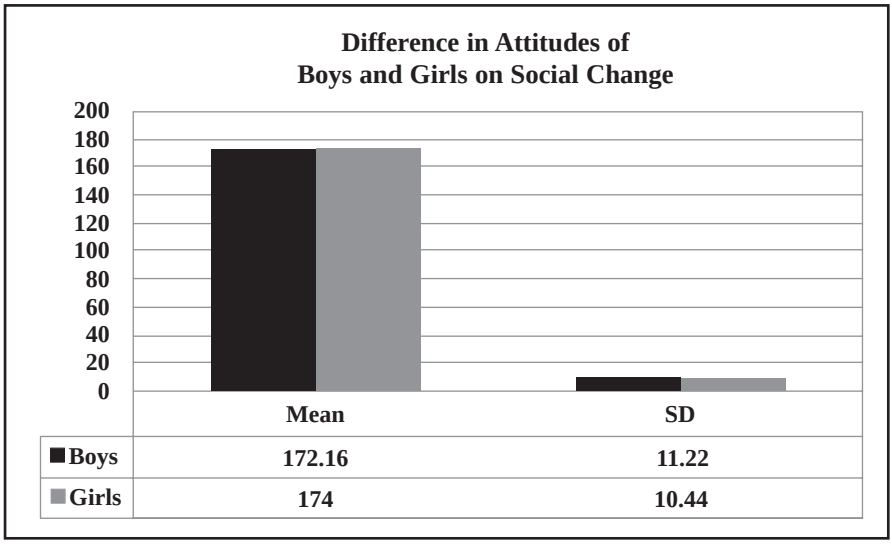

परिकल्पना – 02 ''शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक रूप से कोई अन्तर नहीं है।''

सारिणी – 03
शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक परिवर्तन का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–वैल्यू के आधार पर तुलनात्मक विशलेषण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–वैल्यू
शासकीय विद्यालयों के छात्र	30	171.83	11.95	0.230′
निजी विद्यालयों के छात्र	30	172.5	10.29	

* not significant df = (N1-1) + (N2-1) = (30-1) + (30-1) = 29+29 = 58

स्वतन्त्रता अंश 58 पर एवं 0.05 एवं 0.01 स्तर पर 't' का प्रामाणिक मान क्रमशः 2.004 एवं 2.669 है, जबकि 't' का गणनात्मक मान 0.230 है, जो 't' के प्रामाणिक मान से कम है। अतः अन्तर सार्थक नहीं है तथा यह शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है। अर्थात् शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक रूप से अन्तर नहीं है।''

ग्राफ–02

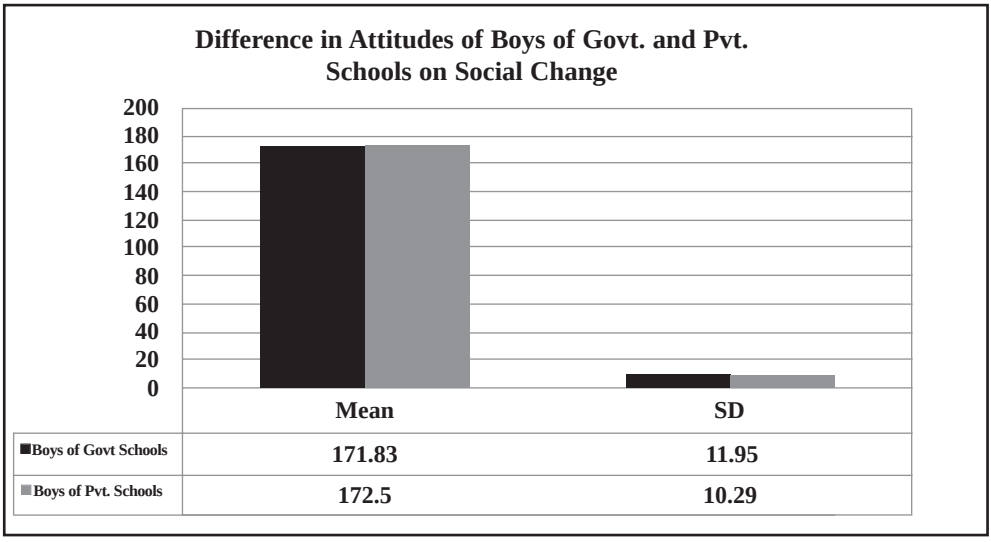

परिकल्पना–03 ''शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं में सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक रूप से अन्तर नहीं है।''

सारिणी – 04

शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं में सामाजिक परिवर्तन का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–वैल्यू के आधार पर तुलनात्मक विशलेषण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–वैल्यू
शासकीय विद्यालयों की छात्राएं	30	174.5	9.6	2.670′
निजी विद्यालयों की छात्राएं	30	173.5	11.09	

*significant df = (N1-1) + (N2-1) = (30-1) + (30-1) = 29+29 = 58

स्वतन्त्रता अंश 58 पर और 0.05 एवं 0.01 स्तर पर 't' का प्रामाणिक मान क्रमशः 2.004 एवं 2.669 है, जबकि 't' का गणनात्मक मान 2.670 है जो कि 't' के दोनों प्रामाणिक मानों से अधिक है, इससे स्पष्ट है कि अन्तर सार्थक है। अतः यह परिकल्पना असत्य सिद्ध होती है। अर्थात् शासकीय एवं निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।'

ग्राफ–03

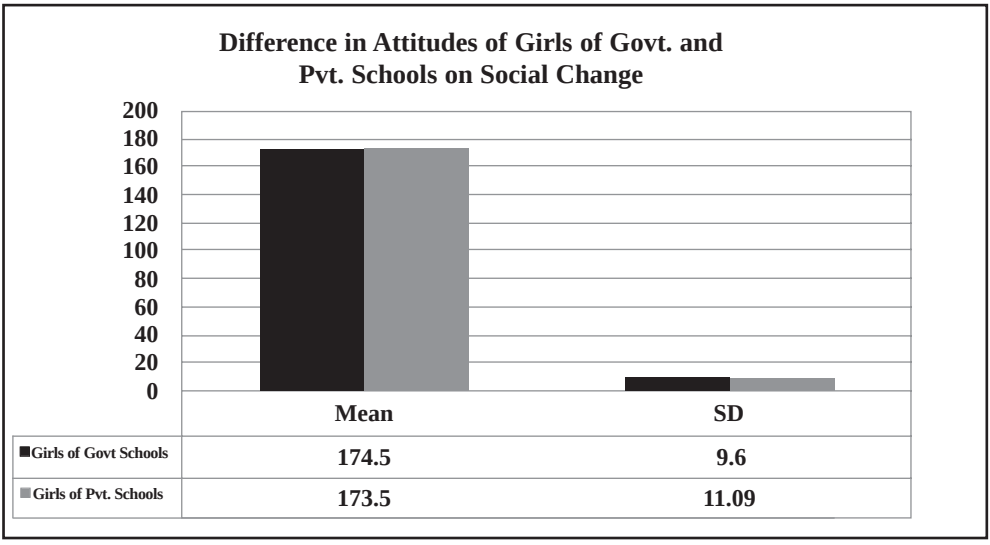

निष्कर्ष एवं सुझाव :

अध्ययन से स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तनों के प्रति उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में लिंग के आधार पर तुलनात्मक रुप से कोई सार्थक अन्तर नहीं है तथा विद्यार्थियों की सामाजिक परिवर्तनों के प्रति अभिवृत्ति में विद्यालय प्रबन्धन के आधार पर तुलनात्मक रुप से कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

अध्ययन के निष्कर्षों से अध्यापकों को विद्यार्थियों की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति स्तर का ज्ञान होने से वह उनको परिवर्तित हो रहीं परिस्थितियों के साथ समायोजन के लिए प्रशिक्षित कर सकते हैं तथा प्रशासक और योजनाकार इसके अनुरुप पाठ्यक्रम में आवश्यक पाठ्यवस्तु के

समावेश के लिए प्रयास कर सकते हैं। इसके साथ ही अनुसंधानकर्त्ता भी उक्त अध्ययन का सन्दर्भ भावी अध्ययन के लिए प्रयोग कर सकते हैं तथा अनुसंधानकर्त्ता सूक्ष्मता से वृहद स्तर पर सम्बन्धित क्षेत्र में अनुसंधान कर सकते हैं ।

संदर्भ

1. Jain, B.M., (1989) Research Methodology Research Publications, Jaipur.
2. NCERT (1993-2000), Sixth Survey of Educational Research, NCERT, New Delhi, Vol.-II, p.p.-537-538
3. (ibid)
4. Tyagi, G.D. and Nand, Vijay Kumar, (2009), Udiyaman Bharat Mein Shiksha, Shri Vinod Prakashan Mandir, Agra.

❍❍❍❍❍

21वीं शताब्दी में स्वैच्छिकवाद ही युवा सशक्तीकरण का सर्वश्रेष्ठ विकल्प

– सरिता पंवार

स्वैच्छिकवाद की संकल्पना

जनतंत्र के प्रति वचनबद्धता भारत की राष्ट्रीयता का प्रमुख अंग है। यहां की स्वैच्छिक परम्परा को सामाजिक सुधार काल और स्वतन्त्रता आन्दोलन से जोड़ा जा सकता है। विशेषकर स्वतन्त्रता आन्दोलन में जब महात्मा गांधी के प्रयासों से रचनात्मक कार्यक्रमों की शुरूआत हुई तो गाँधी ने राजनैतिक परिवर्तन को सामाजिक – आर्थिक परिवर्तन से जुड़ा हुआ माना। तमाम युवक – युवतियाँ उस समय उनके आह्वान पर अपने शिक्षा, व्यवसाय और व्यापार को छोड़कर गरीबों और असहायों के बीच में शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण, स्वास्थ्य और निर्धनता उन्मूलन आदि विभिन्न प्रकार के स्वैच्छिक कार्य करने लगे। गांधी जी की इस धारणा ने स्वैच्छिक कार्य की तत्कालीन गतिविधियों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। सत्याग्रह दशक में निहित उनकी यह धारणा कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए अपनाये जाने वाले साधन नैतिकता से युक्त होने चाहिए, के चलते राजनैतिक स्वतन्त्रता की गतिविधियों में भी स्वैच्छिक सेवा, सामाजिक सेवा और समतामूलक समाज संरचना को अपनाया जाने लगा। इन सारी गतिविधियों में एक संगठित, संवेदनशील, सदाचारी तथा अनुशासित युवा शक्ति शामिल रही। जिन्होंने बाद में अपनी जानकारी, समझ और सोच के आधार पर संगठित दबाव के माध्यम से एक ठोस "स्वैच्छिक" परम्परा का आधार तैयार करने में अपना सघन योगदान दिया। देश में विकास के नये मुद्दे प्रारम्भिक काल से ही स्वैच्छिक प्रयासों से उभरे हैं। जिनमें महिला सशक्तीकरण, पर्यावरण प्रदूषण का विरोध, मूल निवासों से विस्थापित समाज, जल, जंगल व जमीन, मानवाधिकार, सूचना का अधिकार, पंचायती राज के माध्यम से नियोजन व कार्यान्वयन, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य, अनौपचारिक शिक्षा व स्वरोजगार प्रमुख हैं। स्वैच्छिक प्रयासों से उपरोक्त मूद्दों पर अनुसंधान, प्रलेखन, प्रशिक्षण, चर्चा, जानकारी, जन जागरूकता के माध्यम से सरकारी नीति में हस्तक्षेप के व्यापक प्रयास हुए हैं। इसी कारण से विकास संबंधित सरकारी नीतियों का विश्लेषण करने तथा विकास के वैकल्पिक सिद्धान्तों को विकसित करने हेतु सुझाव उपलब्ध हो सके हैं।

इस दौरान तमाम व्यावसायिक व विशिष्ट शिक्षा प्राप्त युवक और युवतियां विकास के स्वैच्छिक प्रयासों से जुड़ने के लिए बड़ी संख्या में आगे आये।

स्वैच्छिक विकास संगठन (V.D.O.) के संदर्भ में भारत

"स्वैच्छिकवाद" की स्वस्थ परम्परा के पोषक हमारे देश में जनहित के कार्यों में अपनी भूमिका निरन्तर बढ़ा रहे हैं। इनका सीधा सरोकार आस्था, ज्ञान और क्षमता से जुड़कर समग्र विकास के प्रयासों को आगे बढ़ाना है। पारदर्शिता और जबावदेही इनका चरित्र है। क्षमता व गरिमा इनका ध्येय है तथा अनेकता में एकता लाने के लिए बिना किसी भेद–भाव के सभी के प्रति सम्मान इनकी आस्था है। इस प्रकार के संगठनों को सामान्यतः जन संगठन, जमीनी जमात, संसाधन संगठन, गैर सरकारी संगठन, स्वयं सेवी अथवा स्वैच्छिक संगठन, मानवाधिकार समिति, सामाजिक कार्यवाही समूह, जन सहायता संगठन आदि नामों से पुकारा जाता है। भारत मे सक्रिय ऐसे संगठनों की लम्बी सूची है। उदाहरण के लिए – राष्ट्रीय स्तर पर पार्टिसिपेटरी रिसर्च इन एशिया "प्रिया" नई दिल्ली, सेन्टर फॉर साइन्स एण्ड इनवायरमैंट, गांधी पीस फाउन्डेशन, तरूण भारत संघ राजस्थान, चर्च तथा ऑक्जीलरी सर्विसेज (कासा), ऑक्सफेम इंडिया, प्रदेश स्तर पर उत्तरांचल वालेन्टरी हैल्थ ऐसोसिएशन, स्वजल, हिमालयन एक्शन रिसर्च सैन्टर, रूलर सैन्टर, चिराग, सोसाइटी फार प्रमोशन ऑफ वैस्ट लैंड डैवलैपमेंट और इसी प्रकार क्षेत्रीय स्तर पर दशोली ग्राम स्वराज्य संघ, हिमालयन स्टडी सर्किल, डालियों का दगड़िया श्रीनगर गढ़वाल तथा ग्रामस्तरीय संगठनों में वन पंचायतें, महिला मंगल दल, कृषक समूह, युवक मंगल दल, स्थानीय जल प्रबंधन समितियां आदि लिए जा सकते हैं जिनके मानदण्ड और कार्य सम्बन्धी नियम भी होते हैं जो उनकी प्रतिबद्धता को जीवन्त बनाये रखते हैं।यही इनको एकरूपता भी प्रदान करते हैं।

दूरगामी दृष्टि और प्रतिबद्धता की समानता स्वैच्छिक संगठनों की पहचान है। इनके अलग–अलग कार्यक्षेत्र में सक्रिय विभिन्न विचारों को पोषित करते हुए ये संगठन अत्यधिक सक्रियता से उद्देश्यों की पूर्ति कर रहे हैं।

स्वैच्छिक संगठनों की विशेषताएँ

1. सामान्यतः सामाजिक परिवर्तन व विकास की लक्ष्यपूर्ति हेतु समाज के अभावग्रस्त वर्ग की बेहतरी के उद्देश्य से स्वैच्छिक आधार पर ये समूह गठित होते हैं।
2. स्वैच्छिक सहभागिता का तत्व इनकी जड़ में रहता है (सदस्यों का जुड़ाव एवं योगदान)।
3. यद्दपि इनका कामकाज देखने वाले निजी लाभ या फायदे (राजनीतिक और वित्तीय) के लिए नहीं होते, फिर भी उनमें वेतनभोगी कर्मचारी होते हैं और संगठन के लक्ष्य को हासिल करने के लिए वे आय प्राप्त करने वाली गतिविधियां भी चलाते हैं।
4. स्वैच्छिक संगठनों में कार्य करने वाले लोगों का काम कई मूल्यों पर आधारित होता है जैसे – सार्वजनिक हित, सेवा, पारदर्शिता, सहभागी तथा जवाबदेही। वे निम्नलिखित कार्यों के लिए लक्ष्य निर्धारित कर उसी दिशा में काम करते रहते हैः

- ऐसे लोगों की हालत में सुधार लाने के लिए जो न तो अपनी क्षमताओं का उपयोग कर पाते हैं और न समाज में अपने अधिकारों का ही पूर्ण उपयोग कर पाते हैं।
- इनका सरोकार जनता अथवा सम्पूर्ण समाज की भलाई से होता है। अतः विघटनकारी अथवा नुकसानदेह प्रयासों से छुटकारा पाने के लिए ये सदैव सक्रिय रहते हैं। ये संगठन स्वैच्छिक और सामाजिक विकास कार्यों के मूल्यों से समझौता किए बिना अनुदान प्राप्त कर अपनी गतिविधियां चलाते हैं।
- शिक्षा, स्वास्थ्य और लोगों को मौलिक अधिकार प्रदान करने के लिए ये संगठन सदैव तत्पर रहते हैं।
- स्वैच्छिक संगठनों के द्वारा जनपक्षीय नीतियों को लागू कराने के लिए समय–समय पर बड़े– बड़े आन्दोलन भी चलाये जाते हैं।

स्वैच्छिक संगठन की दृष्टि व मिशन

1. ये संगठन अपने उद्देश्यों/लक्ष्यों के सम्बन्ध में एक स्पष्ट लिखित वक्तव्य अपनाते हैं और समय–समय पर उसकी समीक्षा भी करते हैं।
2. इस सम्बन्ध में वे एक ऐसा स्पष्ट वक्तव्य अपनाते हैं जो लाभान्वित वर्ग की सही पहचान कर सके तथा विशिष्ट कार्य पद्धति को अपना सके। समय–समय पर ये अपने द्वारा किये गये कार्यों की समीक्षा भी करते हैं।
3. ऐसे संगठन अपने कार्य के भौगौलिक परिदृश्य तथा उसके स्तर के बारे में सतर्क रहते हैं।

स्वैच्छिक विकास संगठनों के माध्यम से सामाजिक व आर्थिक विकास के प्रमुख प्रयास

- लोक संगठनों के सशक्तीकरण की प्रक्रिया में महिला मंगल एवं युवक मंगल दलों का सुगमीकरण कर सामाजिक एवं स्थानीय समस्याओं व मुद्दों को उठाने व उनके समाधान का प्रयास किया गया है।
- स्वयं सहायता समूहों द्वारा महिलाओं को आर्थिक निर्भरता की ओर बढ़ाने के लिए बचत व आयसर्जक कार्यक्रम से जोड़ा जा रहा है। साथ ही परम्परागत दलहनी फसलों के उत्पादन को बढ़ाकर अतिरिक्त उत्पादन के विपणन के लिए बाजार से जोड़ा जा रहा है।
- किसान समूहों के फेडरेशन का सशक्तीकरण एवं कृषि प्रसार शिक्षा द्वारा कौशल वृद्धि कर नगदी फसलों के उत्पादन विपणन को बढ़ाया गया है ताकि कृषि विविधता बनी रहे और पर्यावरण संतुलन भी बना रहे।
- पर्यावरण व प्रकृतिक संसाधनों के उपयोग, प्रबंधन एवं संवर्धन के लिए पर्यावरणीय समूहों की

क्षमता विकास की दिशा में स्वैच्छिक संगठन कार्यरत हैं।

- पंचायती राज संस्थाओं (पंचायत व ग्राम सभा) के माध्यम से स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

स्वैच्छिकवाद में युवाओं की भूमिका (पर्वतीय परिप्रेक्ष्य में)

1950 में एशिया प्रशांत क्षेत्र में युवाओं की कुल जनसंख्या पच्चीस (25) करोड़ के आस–पास थी जो 1980 में उन्चास (49) करोड़ हो गई थी। वर्तमान में यह संख्या सत्तर (70) करोड़ को पार कर गई है। अनुमान लगाया जाता है कि इक्कीसवीं सदी में युवाओं की कुल जनसंख्या लगभग एक अरब होगी। स्पष्ट है कि यह आबादी एक नए चीन के बराबर होगी। भारत और तीसरी दुनिया के देशों में युवा आबादी की संख्या लगभग 60 प्रतिशत है जिनमें से कुछ इण्टरमीडिएट विद्यालयों में तथा कुछ उच्च शिक्षा हेतु महाविद्यालयों में अध्ययनरत् हैं। इनमें से अधिकांश युवा बेराजगार हैं। युवा वर्ग समाज का अत्यधिक ऊर्जावान संसाधन है। अनेक विश्वविद्यालय, उच्च तकनीकी शिक्षण संस्थाऐं तथा विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान प्रमुखतः युवाओं के जमघट के केन्द्र हैं। इन्हीं संस्थाओं से युवा वर्ग संस्कारित और पल्लवित होते हैं। पिछले कुछ दशकों में पाश्चात्य सभ्यता का आक्रमण, भ्रष्टाचार, निर्धनता व बेराजगारी ने सम्पूर्ण समाज के बजाय विशेषकर युवा वर्ग को अत्यधिक प्रभावित किया है। उचित युवा परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों के अभाव में नव आतंकवाद, ग्रामों से शहरों की ओर भारी मात्रा में युवाओं का पलायन, उद्देश्यहीन आन्दोलनों की बाढ़, राजनैतिक हिंसा, साम्प्रदायिकता तथा जातीय संघर्षों के लिये गठित अनेक दलों और सेनाओं में युवाओं की भागीदारी के पार्श्व में कहीं न कहीं बेरोजगारी, हताशा और उपेक्षा ही है। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि चारों ओर के परिवेश, करोड़ो के घोटाले, चरित्रहीन लोगों का सत्ता पर अधिकार, अपराधियों का राजनीतिकरण, मर्यादाविहीन धनोपार्जन व भोग में डूबने की प्रवृत्ति ने अब स्थाई रूप ग्रहण कर लिया है।

इस विकट स्थिति में पर्वतीय क्षेत्रों में युवाओं की विशाल संख्या के लिए समय व क्षेत्र की मांग के अनुसार नई दिशा, नये आयामों को तलाशना समय की अनिवार्यता है। क्षेत्र की विकासोन्मुख योजनाओं में उनका समायोजन करके समाज के लिए प्रत्येक निर्णयों में उनकी सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करना तथा सर्वाधिक ऊर्जावान संसाधन को कुशल व प्रभावी भूमिका प्रदान करना आज के समय की प्रथम आवश्यकता है। विश्वविद्यालयों में तथा उच्च संस्थानों में अध्ययनरत् युवाओं के मध्य संवाद कायम करने की बहुआयामी पहल द्वारा इन्हें दायित्वों का बोध एवं संवेदनशीलता के अहसास का ज्ञान कराना भी आज की प्राथमिकता है।

स्वैच्छिक जगत में युवाओं के लिए अवसर

भारत में स्वैच्छिक विकास के प्रयासों में युवाओं का जुड़ाव अधिकतर आन्दोलनों के माध्यम से हुआ है। हाल के वर्षों में भी स्वैच्छिक कार्यों में उनकी भूमिका सराहनीय रही है किन्तु जिस संख्या में युवाओं का इस प्रयास में योगदान होना चाहिए था वह नहीं हो सका है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वैच्छिक प्रयासों के प्रति युवाओं में अब पहले जैसा उत्साह नहीं रहा। आज युवा वर्ग शिक्षा प्राप्त करने के बाद दिग्भ्रमित हो सिर्फ गिनी–चुनी सरकारी नौकरियों के तरफ भागा जा रहा है। जब वह इसे प्राप्त नहीं कर पाता तो निराशा व कुंठा का शिकार हो जाता है और समाज विरोधी कृत्यों से जुड़ जाता है। यह बात सही है कि साधारण पृष्ठभूमि वाले युवा ही ज्यादातर स्वैच्छिक कार्यों के प्रति आकर्षित हुए हैं परन्तु आज के स्वैच्छिक जगत में समस्त व्यवसायिक व विशिष्ट शिक्षा प्राप्त युवाओं से लेकर साधारण शिक्षित युवाओं तक के लिए रोजगार के व्यापक अवसर मौजूद हैं।

युवाओं के लिए स्वैच्छिक संगठनों में शिक्षानुसार निम्न प्रकार से रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं

1. अनौपचारिक/साधारण रूप से शिक्षित युवा :– इस प्रकार के शिक्षित युवा ग्रास रूट स्तर के स्वैच्छिक संगठनों में ग्रामस्तरीय कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य कर रहे हैं/कर सकते हैं। इनका योगदान ग्रामीणों को जागरूक करने तथा संस्था के कार्यक्रमों को अपनाने के लिए प्रचार–प्रसार करने और प्राथमिक सूचनाओं को एकत्रित करना हो सकता हैं।
2. मध्यम अथवा उच्च शिक्षा प्राप्त युवा :– इस वर्ग के युवाओं का ग्रास रूट स्तर के स्वैच्छिक संगठनों में चाहे वे ग्रामीण क्षेत्रों में हो या शहरी क्षेत्रों में सामुदायिक कार्यकर्त्ता के रूप में योगदान हो रहा है। कहीं –कहीं पर युवा छोटे स्वैच्छिक संस्थानों का प्रबंधन, लेखन व उनके कार्यक्रमों में भी योगदान दे रहे हैं।
3. समाज विज्ञान में उच्च शिक्षा प्राप्त युवा :– वर्तमान समय में स्वैच्छिक संगठनों का क्षेत्र इतना विशिष्ट, व्यापक और विस्तृत हो चुका है कि इसमें सभी सामाजिक विज्ञानों के स्नातकोत्तर युवाओं के लिए व्यापक अवसर हैं। स्वैच्छिक संगठनों से जुड़कर कार्य करने में एक तरफ युवाओं द्वारा किये गये विषयों की सार्थकता होती है तो दूसरी तरफ समाज का कल्याण। आज समाजशास्त्र, एन्थ्रोपॉलोजी, अर्थशास्त्र, भूगोल, सांख्यिकी, मनोविज्ञान आदि सामाजिक विज्ञानों से जुड़े हुए युवाओं के लिए स्वैच्छिक संगठनों में विशिष्ट कार्य पद्धतियाँ और कार्य क्षेत्र बढ़ते जा रहे हैं।
4. व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त युवा :– आज विश्व विशेषीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है। सभी कार्य आज विशेषीकृत होते जा रहे हैं। सभी क्षेत्रों में विशेषीकृत एवं व्यावसायिक

शिक्षा प्राप्त लोगों की मांग हैं। स्वैच्छिक संगठन भी अपने को आज की इस मांग से अलग नहीं कर सकते हैं। इसलिए इनमें भी व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त युवाओं के लिए काफी अवसर हैं। जिन व्यावसायिक विशेषीकृत वोकेशनल शिक्षा की स्वैच्छिक संस्थाओं में मांग बढ़ती जा रही है उनका विवरण इस प्रकार से है–

(क) एम.एस.डब्ल्यू. या समाज कार्य में स्नातकोत्तर उपाधि

एम.एस.डब्ल्यू. आज स्वैच्छिक संगठनों का एक आवश्यक अंग बनता जा रहा है। यह एक व्यावसायिक शिक्षा है जो कि वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीकी निपुणता पर आधारित है। आज देश में कुछ बहुत अच्छे संस्थान उपलब्ध हैं जो समाज कार्य में स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधियां प्रदान कर रहे हैं जैसे – जेवियर इंस्टीट्यूट रांची, शान्ति–निकेतन विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया, काशी विद्यापीठ, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल वर्क, लखनऊ विश्वविद्यालय। आज सामाजिक कार्यों में कई प्रकार के विशेषीकृत पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं–

- ग्रामीण विकास एवं कोऑपरेटिव
- मेडिकल समाज वर्ग
- श्रमिक विधि एवं श्रम कल्याण
- समाज कल्याण प्रशासन
- मानव संसाधन विकास
- मनोसामाजिक समाज कार्य
- परिवार कल्याण
- अपराध एवं दण्डनात्मक शास्त्र
- बच्चों तथा युवाओं के कल्याणार्थ सेवायें
- जनजतीय कल्याण एवं समस्या

उपरोक्त विषयों से सम्बन्धित कार्य आज के स्वैच्छिक संगठनों की जरूरत बन चुकी है।

(ख) प्रबन्धन शिक्षा

जैसे – जैसे स्वैच्छिक संगठनों का कार्यबोझ बढ़ा है, वैसे – वैसे उनके कार्यक्रम प्रबंधन, लेखांकन की आवश्यकता भी बढ़ी है। इसी दिशा में आज मानव संसाधन, लेखा और ग्रामीण विकास में प्रबंधन किये हुए युवाओं के लिए अवसर उपलब्ध हैं।

(ग) तकनीकी शिक्षा

आज स्वैच्छिक संगठन जहां लोगों को एक ओर जागरूक व प्रशिक्षित कर उनके कल्याणार्थ, सेवार्थ कार्यक्रम चला रहे है वहीं दूसरी ओर उनके विकास के लिए कई निर्माणात्मक परियोजनाएँ भी चला रहे हैं। ऐसे में मैकेनिकल, इलेक्ट्रानिक्स, इंस्टमेन्टेशन आदि में तकनीकी शिक्षा प्राप्त किये हुए युवाओं के लिए स्वैच्छिक संगठनों में पर्याप्त अवसर है।

(घ) मेडिकल साइन्स

बेहतर स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण आज के समाज की मांग है। इसलिए आज स्वैच्छिक क्षेत्रों में भी नर्सिग एवं डाक्टरी सेवाओं की आवश्यकता बढ़ती चली आ रही है। दिन–प्रतिदिन औद्यौगिकीकरण से नगरी क्षेत्र के प्रसार के फलस्वरूप उत्पन्न प्रदूषण जनित क्षय एवं एड्स जैसे भयानक रोगों के उपचार एवं उनकी विभीषिकाओं के बचाव के उपाय आज के स्वैच्छिक जगत की उल्लेखनीय गतिविधियों में शामिल हो रहे हैं। ऐसे में उपर्युक्त विद्या में शिक्षित युवक/युवतियों के लिए स्वैच्छिक संगठनों में व्यापक अवसर हैं।

(ड) विधि शिक्षा

सभी स्वैच्छिक संगठनों का एक मात्र लक्ष्य सामाजिक न्याय से परिवर्तन लाकर उसका विकास करना है। इसके लिए समानता, सुरक्षा, अधिकार एवं दायित्व को सुनिश्चित करना आवश्यक है। इसके लिए जन–जीवन को प्रभावित करने वाले कानूनों यथा भूमि, परिवार, अपराध व अन्य आवश्यक कानूनों की सरल जानकारी देकर स्वतः सुरक्षा हेतु तैयार करना जरूरी है। इसलिए विधि में शिक्षा प्राप्त युवाओं के लिए भी स्वैच्छिक संगठनों में पर्याप्त अवसर हैं।

(च) पर्यावरण

जिस प्रकार से आज तक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और इस्तेमाल हुआ है उससे बहुत ज्यादा दिनों तक हम उनका इस्तेमाल नहीं कर सकते। विकास के नाम पर जंगलों की कटाई, खनिजों का अनियंत्रित खनन, वन्य जीवों का संहार तथा प्राकृतिक जल के भण्डारों को उचित प्रबंधन किये बिना इस्तेमाल किया गया है उससे पर्यावरण का संतुलन बिगड़ गया है। इसलिए आज पर्यावरण संतुलन, वन एवं वन्य जीवन संरक्षण स्वैच्छिक संगठनों का एक प्रमुख कार्य बन गया है। इसलिए उपरोक्त विषय में शिक्षित युवाओं के लिए भी आज इस क्षेत्र में व्यापक अवसर हैं।

(छ) पत्रकारिता/मीडिया

अपनी संस्था या कार्यक्रम से सम्बन्धित बातों को अपने पत्र, संवाद पत्र, पत्रिका या प्रतिवेदन के माध्यम से स्वैच्छिक संगठन, सरकार अथवा दूसरे स्वैच्छिक संगठनों या जनमानस तक पहुंचाना चाहती है। इसके लिए पत्रकारिता का अत्याधिक महत्व है। अतः ऐसे युवा जिन्होंने पत्रकारिता में डिग्री या डिप्लोमा किया है उनके लिए आज स्वैच्छिक संगठनों में पर्याप्त अवसर हैं।

इस प्रकार के बहुत से विषय और भी है जिनका सम्बन्ध सामाजिक विकास क्षेत्र में प्रशिक्षण, अध्ययन, प्रतिवेदन, अनुश्रवण, निर्माण, प्रचार–प्रसार, पर्यावरण, वन, वन्यजीव संरक्षण, भूमि सुधार, जल प्रबन्धन आदि से है, उन युवाओं के लिए भी इस क्षेत्र में रोजगार के व्यापक अवसर हैं।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि स्वैच्छिक संगठन जहां एक ओर समाज परिवर्तन तथा विकास के सभी आयामों – शिक्षा, प्रशिक्षण, सेवायें, निर्माण आदि को पूरा कर रहे हैं वहीं साथ–साथ वे देश के आधार स्तम्भ युवाओं को अपने यहां रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर उनकी शक्ति एवं उत्साह को रचनात्मक कार्यों में प्रयोग करके एक बेहतर समाज के निर्माण की ओर अग्रसर हैं।

सन्दर्भ

1. डा. राजेश टंडन, जुलाई 2001, "सिविल सोसायटी एण्ड मिडिया – कन्ट्रीब्यूशन टू गुड गवर्नेस", क्वालापम्पुर, मलेशिया में नागर समाज और मीडिया सेमीनार के समक्ष पढ़ा गया मुख्य वक्तव्य।
2. नीरज गोपाल जयाल/सुधा पाई, 2001: डेमोक्रेटिक गवर्नेन्स इन इंडिया : चैलंजिज ऑफ पॉवर्टी, डिवेलमेंट एण्ड आईडेंटिटी, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन।
3. मलिनी नांबियार, 2002, "सिटीजनशिप एण्ड डेमोक्रेसी इन इण्डिया : सोलहवां बरनाबस स्मृति व्याख्यान, नई दिल्ली।
4. हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट "चिरन्तर विकास के लिए समुदाय का सशक्तीकरण" 2003, चारू प्रिन्टर्स, देहरादून से प्रकाशित।
5. प्रिया, 2003 गवर्नेन्स वेयर पीपुल मैटर, प्रिया के बीसवें समारोह के दौरान दिए गए वक्तव्यों और उद्धरणों पर केन्द्रित पुस्तक, प्रकाशनाधीन। नई दिल्ली, प्रिया प्रकाशन।
6. डा. मोहन सिंह पंवार, "युवाओं में स्वैच्छिकवाद का विकास – दृष्टि दशा एवं दिशा", 7 से 11 नवम्बर 2003 को प्रौढ़ सतत् एवं प्रसार विभाग द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम में दिया गया व्याख्यान।

विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य : एक चुनौती

जितेन्द्र कुमार पाटीदार
कमल किशोर यादव

प्रस्तावना

वर्तमान समय में विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र गति से विकास हो रहा है। भू–मण्डलीकरण के कारण भारत में विकसित देशों का संपर्क बढ़ा है, इससे शैक्षिक संसार भी अछूता नहीं रहा है। समाज की आवश्यकता के कारण शिक्षा में नवीनतम विषयों का समावेश हो रहा है। जिससे प्रतिस्पर्धा का वातावरण निर्मित हो रहा है। शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के समक्ष अपना भविष्य संवारने का लक्ष्य एक प्रमुख प्राथमिकता बना हुआ है। अतः ऐसे वातावरण में विद्यार्थियों का शारीरिक रूप से स्वस्थ होने के साथ ही मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहने की चुनौती है। यही चुनौती नीतिनिर्धारकों, शिक्षाविदों, शिक्षकों एवं शिक्षण संस्थानों के समक्ष भी है। यहां पर इसी चुनौती को समझाने की कोशिश की गई है।

मानसिक स्वास्थ्य का अभिप्राय

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ केवल मानसिक रोगों का अभाव होना नहीं है, हो सकता है कि मानसिक रोगों से मुक्त होने के बावजूद एक व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ न भी हो। अतएव मानसिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक रोगों की अनुपस्थिति के साथ–साथ भावों, इच्छाओं, अभिलाषाओं, संवेगों तथा जीवन के आदर्शों में सन्तुलन होना भी आवश्यक है। आधुनिक मत के अनुसार व्यक्ति मनोशारीरिक तत्वों की एक समन्वित इकाई है। अतः मानव व्यवहार दैहिक एवं मानसिक दोनों तत्वों से निर्धारित होता है। इसलिए व्यक्ति के व्यवहार एवं विचार में संतुलन तभी हो सकता है, जब उसके शरीर तथा मन के बीच सामंजस्य हो। व्यक्ति की इसी मनोशारीरिक सामांजस्यता को मानसिक स्वास्थ्य कहते हैं।

हेडफील्ड के शब्दों में – "मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का संवादी कृत्य है।" Mental Hygiene in Public Health नामक पुस्तक में पी. वी. ल्यूकन ने लिखा है, "मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति वह है, जो स्वयं सुखी है, अपने पड़ौस में शान्तिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है और इन आधारभूत कर्त्तव्यों को करने के बाद भी जिसमें इतनी शक्ति बच जाती है, कि वह समाज के हित के लिए कुछ कर सके। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपने पर्यावरण से भली प्रकार से सामंजस्य कर पाता है और अपनी, अपने परिवार की तथा अपने समाज की उन्नति

के लिए कोशिश करता है।"

मैनिंगर ने "The Human Mind" नामक पुस्तक में लिखा है – "हम मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा अधिकतम प्रभावोत्पादकता और आनन्द के साथ मानव प्राणियों का दुनिया से और परस्पर सामंजस्य के रूप में कर सकते हैं। वह एक स्वभाव, एक तीव्र बुद्धि, सामाजिक रूप से सन्तुलित व्यवहार और एक आनन्दमय स्नायुविन्यास बनाये रखने की योग्यता है।" जैसा कि इस परिभाषा से स्पष्ट है, सामंजस्य मानसिक स्वास्थ्य का मुख्य लक्षण है। यह जितना अधिक होगा, मानसिक स्वास्थ्य भी उतना ही अधिक माना जा सकता है। यह जितना कम होगा उतनी ही मानसिक अस्वस्थता होगी। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य जीवन का एक ऐसा तरीका है जिसमें व्यक्ति का, पर्यावरण से भली प्रकार समायोजन बना रहता है।

कट्स एवं भोसले के अनुसार – "हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य वह योग्यता है, जिससे हम जीवन की कठिन परिस्थितियों से अपना सामंजस्य स्थापित करते हैं और मानसिक आरोग्य वह साधन है, जो इस सामंजस्य को सम्भव बनाता है।" अतः हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य समायोजन करने का साध्य है। जो व्यक्ति शीघ्र अपने वातावरण के साथ समायोजन करता है वह उतना ही अधिक मानसिक रूप से स्वस्थ होता है।

मानसिक स्वास्थ्य के तत्व

मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में किए गए विभिन्न अध्ययनों की कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे – कार्ल रोजर्स, मैसलो एवं मिटिलमैन (1951) द्वारा समीक्षा की गई। उनकी समीक्षा के आधार पर कुछ ऐसे सूचकों की सूची तैयार हुई है, जिससे धनात्मक मानसिक स्वास्थ्य को प्रमुख तत्व के रूप में समझा गया है। ऐसे सूचक निम्नलिखित हैं –

1. सामान्य वृद्धि एवं विकास,
2. स्वयं के प्रति उचित दृष्टिकोण,
3. स्वतंत्रता,
4. अधिकतम स्तर तक अपनी क्षमता का उपयोग करना,
5. भविष्य की ओर उन्मुखता,
6. जीवन के प्रति समन्वित दृष्टकोण तथा तनाव के प्रति प्रतिरोध,
7. अहम् पहचान का ज्ञान,
8. वास्तविकता का प्रत्यक्षण तथा आवश्यकता विकृति से स्वतंत्रता,
9. स्वस्थ आत्मसम्मान पर आधारित ज्ञान,
10. दूसरों के प्रति स्नेह एवं विश्वास का भाव रखना,
11. सुरक्षा का भाव,

12. तर्कसंगत निर्भरता,
13. तर्कसंगत आक्रामकता,
14. अनुभवों में खुलापन,
15. समूह की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता,
16. उत्तम अन्तर्वैयक्तिक घनिष्ठता विकसित करने की क्षमता,
17. प्रयोगात्मक आँकड़ों के अनुरूप उचित संकेतीकरण का प्रयोग,
18. कल्याणकारी संवेगों जैसे खुशी, हर्ष, सुखद भाव उत्पन्न करने की क्षमता,
19. नवीनतम क्षणों के साथ सृजनात्मक अनुकूलन,
20. अपने अनुभवों के साथ आत्म संरचनाओं की संगतता,
21. लचीलापन,

जहोड़ा (1959) ने समीक्षा करके यह बतलाया है कि धनात्मक मानसिक स्वास्थ्य के निम्नांकित छः प्रमुख तत्व होते हैं –

1. स्वयं के प्रति धनात्मक मनोवृत्ति,
2. आदर्श वृद्धि एवं विकास तथा आत्मसिद्धि,
3. मानसिक समन्वय,
4. वैयक्तिक स्वतंत्रता,
5. वातावरण का वास्तविक प्रत्यक्षण,
6. पर्याप्त पर्यावरणीय निपुणता,

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताएँ

मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं –

आत्म ज्ञान – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसे अपनी प्रेरणा, इच्छा, भाव, आकांक्षाओं आदि का पूर्ण ज्ञान होता है। वह यह पूर्णतः समझता है कि वह क्या कर रहा है, क्यों उसमे किसी विशेश प्रकार का भाव उत्पन्न हो रहा है।

आत्म मूल्यांकन – ऐसा व्यक्ति अपनी योग्यताओं, दुर्बलताओं तथा आवश्यकताओं का ज्ञान रखता है। वह अपने प्रत्येक व्यवहार का तटस्थ होकर अध्ययन करता है तथा अपने व्यवहार की परिसीमाओं की परख करता है।

आत्म सम्मान – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में आत्मसम्मान की भावना होती है, जिसके कारण उसमें आत्मविश्वास, आत्मबल तथा अपने भावों को स्वीकार करते हुए कार्य करने की क्षमता

होती है।

सहनशीलता – ऐसे व्यक्ति सहनशील होते हैं। वे जीवन की निराशाओं एवं बाधाओं से घबराते नहीं वरन् दृढ़ विश्वास के साथ समाधान की कोशिश करते रहते हैं। वे आशावादी होते हैं निराशावादी नहीं।

संवेगात्मक परिपक्वता – मन से स्वस्थ व्यक्ति के विचार एवं व्यवहार में संवेगात्मक परिपक्वता देखी जा सकती है। वह भय, क्रोध, प्रेम आदि संवेगों पर पूर्ण नियंत्रण रखता है और उनकी अभिव्यक्ति आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में तथा वांछनीय ढंग से करता है।

शीघ्र निर्णय – जो व्यक्ति मन से स्वस्थ होता है वह किसी समस्या के सम्बन्ध में तुरन्त निर्णय करने में समर्थ होता है। इसका कारण यह है कि ऐसा व्यक्ति मानसिक संघर्ष, शंका आदि से मुक्त होता है।

शारीरिक स्वास्थ्य की सतर्कता – ऐसा व्यक्ति अपने शारीरिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सदैव सतर्क रहता है। अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भोजन, विश्राम, व्यायाम आदि का अच्छा से अच्छा प्रबन्ध करता है और शारीरिक रोगों से बचने का हर संभव प्रयास करता है।

मानसिक विकृतियों का अभाव – ऐसे व्यक्ति में किसी प्रकार का मानसिक रोग नहीं पाया जाता है। वे मनःस्नायु–विकृति, लैंगिक विकृति, व्यक्तित्व विकृति आदि मानसिक विकृतियों से मुक्त होते हैं।

निश्चित जीवन लक्ष्य – उसका जीवन उद्देश्यपूर्ण होता है। वह अपने जीवन का एक लक्ष्य निर्धारित कर लेता है और उसकी प्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है।

वास्तविक प्रत्यक्षण – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति किसी वस्तु या घटना का प्रत्यक्षण वस्तुनिष्ठ ढंग से करते हैं। वे इन चीजों का प्रत्यक्षण ठीक उसी ढंग से करने की कोशिश करते हैं जो वास्तविक होता है। वे काल्पनिक तथ्यों का सहारा नहीं लेते हैं।

रचनात्मक कार्य – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति रचनात्मक कार्यों में अधिक रूचि लेता है। इस प्रकार वह अपने तथा समाज के लिए हितकर सिद्ध होता है। इसके विपरीत मन से अस्वस्थ व्यक्ति विनाशकारी कार्यों के द्वारा अपने तथा अपने समाज के लिए अहितकर साबित होता है।

सामाजिक समायोजन – मानसिक स्वास्थ्य का मुख्य लक्षण सामाजिक समायोजन है। समाज में मुख्यतः तीन प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं –

व्यक्ति ——— व्यक्ति
समूह ——— समूह
व्यक्ति ——— समूह

मन से स्वस्थ व्यक्ति के ये तीनों सम्बन्ध संतोषप्रद होते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य का महत्व

मनोविज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का काफी महत्व है। मानसिक स्वास्थ्य के महत्वों को निम्नलिखित ढ़ंग से उल्लेखित किया गया है –

निरोधात्मक, उपचारात्मक एवं संरक्षणात्मक महत्व

मनोवैज्ञानिकों के द्वारा व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन सिर्फ इसलिए नहीं किया जाता है कि ऐसे व्यक्तियों की पहचान करके उन्हें समायोजित एवं संतुलित व्यक्तियों से अलग रखा जाए तथा कुसमायोजित एवं असंतुलित व्यक्तियों का ठीक ढंग से उपचार किया जा सके ताकि वे भी मानसिक रूप से स्वस्थ हो जाए बल्कि इसलिए भी किया जाता है, कि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपनी समायोजनशीलता को और भी अधिक उत्तम एवं आदर्श बना सके ताकि उसके व्यवहार को एक मॉडल मानकर अन्य लोग भी व्यवहार करने के लिए प्रभावित हों।

बाल मार्गदर्शन सम्बन्धी महत्व

बाल मार्गदर्शन में मानसिक स्वास्थ्य का बहुत अधिक महत्व है। बाल मार्गदर्शन का उद्देश्य बालकों का संवेगात्मक विकास, शारीरिक विकास, मानसिक विकास, सामाजिक विकास तथा शैक्षणिक विकास आदि करना होता है। यह तभी संभव है जब बालक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक हो या उसके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के पर्याप्त उपाय किए गए हों। बाल मार्गदर्शन में शिक्षकों तथा माता–पिता की भूमिका प्रमुख होती है।

व्यक्ति सम्बन्धी महत्व

व्यक्ति का बौद्धिक, शारीरिक एवं संवेगात्मक विकास तभी संभव है जब वह मानसिक रूप से स्वस्थ हो। कोरचिन (1985) के अनुसार "धनात्मक मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति की सफलता की कुँजी है। व्यक्ति में किसी प्रकार का कोई विघटनात्मक बल (Disintegrating force) न उत्पन्न हो सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति में मानसिक संतुलन हों एवं उसका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा हो।"

समाजिक महत्व

मानसिक स्वास्थ्य का सामाजिक महत्व भी है। मानसिक स्वास्थ्य से सामाजिक जीवन में उत्तम जागरुकता आती है और समाज का चौमुखी विकास होता है। जब किसी समाज के अधिकांश व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होता है तो समाज का मनोबल ऊँचा होता है तथा उसमें संगठनात्मक प्रक्रियाएँ सक्रिय होती हैं। इससे समाज का भविष्य सुरक्षित रहता है तथा समाज

कल्याणकारी दिशा में अग्रसर रहता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य का उत्तम होना कई दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है।

मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ या अस्वस्थ बनाने में कई कारकों का योगदान होता है। कुछ मौलिक कारक निम्नलिखित हैं –

आनुवांशिकता – आनुवांशिकता मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला मुख्य कारक है। अध्ययनों से पता चला है कि मनःस्नायु विकृति तथा मनोविकृति बहुत अंशों तक वंशागत् होती है। जहाँ तक मानसिक दुर्बलता का प्रश्न है, इसका मूल आधार आनुवांशिकता ही है।

शारीरिक स्वास्थ्य – मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य में गहरा सम्बन्ध है। जिस व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम होता है, उसमें सामान्यतः चिन्ता, संघर्ष (द्वन्द्व), विरोधाभास आदि नकारात्मक तत्व नहीं होते हैं। शारीरिक स्वास्थ्य के कारण उसमें शारीरिक उर्जा पर्याप्त होती है और उसमें कार्य संतोष भी अधिक रहता है। कहा भी गया है कि – "Sound mind in a sound body"

परिवारिक वातावरण – बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर घर के वातावरण का काफी प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से माता–पिता तथा अभिभावक के व्यवहारों का प्रत्यक्ष प्रभाव बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। जो माता–पिता अपने सभी बच्चों के साथ समान व्यवहार करते हैं, उनके साथ हिल–मिलकर खेलते तथा बातचीत करते हैं, उनकी आवश्यकताओं को समझने का प्रयास करते हैं, उनके सामने लड़ने–झगड़ने से बचते हैं तथा अपने व्यवहारों में सामंजस्य बरतते हैं, उनकी सन्तानें मानसिक रूप से स्वस्थ होती है। हेडफिल्ड के अनुसार जिस परिवार में बच्चों के पालन–पोषण की पद्धति अत्यधिक कठोर होती है, वहाँ बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। अध्ययनों से ज्ञात होता है कि टूटे हुए परिवारों के बालक ज्यादातर कुसमायोजित होते हैं। अतः बालकों को मानसिक रूप से स्वस्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि घर का वातावरण अनुकूल तथा समायोजित हो।

मौलिक आवश्यकताओं की संतुष्टि – मानसिक स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए व्यक्ति की मौलिक आवश्यकताओं की संतुष्टि जरूरी है। मौलिक आवश्यकताएँ दो प्रकार की होती हैं – (अ) शारीरिक या दैहिक जैसे – भूख, प्यास, काम इत्यादि।

(ब) संवेगात्मक या मनोवैज्ञानिक जैसे – सुरक्षा की भावना, सामाजिक मान्यता आदि।

जिन बालकों में इन सभी आवश्यकताओं की संतुष्टि होती रहती है, वे समायोजित एवं मन से स्वस्थ होते हैं। इसके विपरीत जिन बच्चों की ये आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो पाती हैं, वे कुण्ठित एवं स्वभावतः कुसमायोजित तथा मन से अस्वस्थ रहते हैं। मानसिक स्वास्थ्य पर दैहिक आवश्यकताओं की अपेक्षा संवेगात्मक आवश्यकताओं का अधिक प्रभाव पड़ता है।

वास्तविक मनोवृत्ति की कमी – यदि किसी व्यक्ति में किसी कारण से वास्तविकता से हटकर काल्पनिक दुनिया में विचरण करने कि आदत बन जाती है, तो ऐसे व्यक्तियों में घटनाओं, वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति एक तरह की अवास्तविक मनोवृत्ति विकसित हो जाती है। जिसके कारण उसमें आवेगशीलता (Impulsivity) संवेगिक अनियंत्रण, चिड़चिड़ापन आदि लक्षण विकसित हो जाते हैं और उनका मानसिक स्वास्थ्य धीरे–धीरे असामान्य हो जाता है।

मनोरंजन के साधन का अभाव – मैकोवर (1990) ने पर्याप्त मनोरंजन एवं मानसिक स्वास्थ्य में सीधा सम्बन्ध बताया है। इनका मत है कि यदि किसी व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार पर्याप्त मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं तो उसमें मानसिक प्रफुल्लता पायी जाती है और उनका मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है, परन्तु यदि किसी कारण से किसी व्यक्ति का उसकी इच्छानुसार पर्याप्त मनोरंजन नहीं हो पाता है, तो उसमें मानसिक घुटन उत्पन्न हो जाती है, जो धीरे–धीरे उनके मानसिक स्वास्थ्य को कमजोर करती है। अतः स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य कई कारकों से प्रभावित होता है। इन कारकों को नियंत्रित करके मानसिक स्वास्थ्य को काफी हद तक उन्नत बनाया जा सकता है।

विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के उपाय

विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं –

(अ) शिक्षक की प्रभावी भूमिका,

(ब) उपयुक्त पाठ्यक्रम की भूमिका,

(स) उपयुक्त विद्यालय अनुशासन की भूमिका,

(अ) शिक्षक की प्रभावी भूमिका

विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार करने का सबसे बड़ा दायित्व शिक्षक पर है। यदि शिक्षक निम्नलिखित परामर्शों पर अमल करें तो बहुत हद तक विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हो सकेगा –

- ❖ वे बालकों की आवश्यकताओं, योग्यताओं तथा अभिरुचियों को समझें तदनुसार उनकी शिक्षा की व्यवस्था करें तथा उनकी सन्तुष्टि के लिए प्रयास करें।
- ❖ वे खासकर छोटे–छोटे बालकों के साथ प्रेम और स्नेह का प्रदर्शन करें ताकि उन्हें अपने माता–पिता की कमी महसूस न हो।
- ❖ शिक्षकों को व्यक्तिगत भिन्नता के सिद्धान्त के तथ्यों से अवगत होना चाहिए तथा समझना चाहिए कि न केवल विभिन्न बालकों की मानसिक योग्यताओं में अन्तर होता है, बल्कि एक ही बालक की विभिन्न मानसिक क्षमताओं में भी भिन्नता होती है।

- ❖ विद्यार्थियों में हीन भावना उत्पन्न न हों इसके लिए उनकी त्रुटियों तथा सीमाओं की ओर बार–बार ध्यान आकृष्ट न किया जाए। उन्हें रचनात्मक कार्यों में लगायें जो उनकी क्षमतानुसार हो तथा उन्हें बोझ न लगे।
- ❖ किशोर बालकों के साथ शिक्षक को बहुत ही नियंत्रित व्यवहार करना चाहिये उनकी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए समुचित राह ढूँढनी चाहिए।
- ❖ विद्यार्थियों को जीवन के आदर्शों से अवगत करायें ताकि वे एक विशिष्ट जीवन दर्शन निर्धारित कर सकें और वास्तविक जगत में कदम जमा सकें।

(ब) विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में पाठ्यक्रम की भूमिका

विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य और उनके पाठ्यक्रम में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। कारण यह है कि विभिन्न अवस्थाओं में बालकों की विभिन्न आवश्यकताओं, संवेगों तथा प्रवृत्तियों की संतुष्टि में पाठ्यक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने तथा उसे कायम रखने के लिए पाठ्यक्रम सम्बन्धी निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं –

- ❖ पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय बालकों की आवश्यकताओं, अभिरुचियों एवं संवेगाात्मक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। पाठ्यक्रम बनाने वालों को यह समझना चाहिए कि विभिन्न अवस्थाओं के बालकों की आवश्यकताएँ तथा संवेग विभिन्न होते हैं। अतः पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे उनकी आवश्यकताओं तथा संवेगों की संतुष्टि हो सके।
- ❖ पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस बात को भी ध्यान में रखा जाए की मानसिक क्षमताएँ समान मात्रा में नहीं होती उनमें व्यक्तिगत भिन्नताएँ होती हैं। अतः पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो सभी स्तर के बालकों के अनुकूल हो।
- ❖ पाठ्यक्रम बनाते समय विद्यार्थियों की तात्कालिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए न कि दूरस्थ आवश्यकताओं को।
- ❖ पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध बालकों के जीवन से हो।
- ❖ पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों का ऐसा चयन हो कि उनके बीच धनात्मक सहसम्बन्ध संभव हो सके।
- ❖ पाठ्यक्रम में लचीलापन होना चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार उसमें परिमार्जन लाया जा सके।
- ❖ बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए यह भी आवश्यक है कि पाठ्यक्रम के अन्तर्गत पाठ्येत्तर क्रियाओं जैसे – ड्रामा, खेलकूद, वाद–विवाद आदि की व्यवस्था हो।
- ❖ पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को भी रखना चाहिए जिनसे बालकों में नैतिक चेतना जागृत हो सके।

परन्तु नैतिक आदर्शों का सार्वलौकिक होना आवश्यक है। कारण यह है कि संकीर्ण आदर्शों से बालकों में संकीर्णता आती है और वे मानसिक रूप से अस्वस्थ बन जाते हैं।

- ❖ पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमे रूचिपूर्ण शिक्षण विधियों एवं शिक्षण सामग्रियों का उपयोग किया जा सके।

(स) विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने मे विद्यालय अनुशासन की भूमिका

विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर विद्यालय के अनुशासन का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार लाने हेतु अनुशासन सम्बन्धी निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं –

- ❖ विद्यालय के अन्तर्गत अनुशासन की व्यवस्था शैक्षिक सफलता के लिए अनिवार्य है परन्तु अनुशासन न तो अत्यधिक कठोर होना चाहिए और न अत्यधिक लचीला होना चाहिए। कठोर या लचीला अनुशासन बालकों को मानसिक रूप से अस्वस्थ बना देता है।
- ❖ सत्तावादी अनुशासन विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए खतरनाक साबित होता है। अतः विद्यालय में इस तरह का अनुशासन नहीं होना चाहिए।
- ❖ दण्ड, पुरस्कार आदि अनुशासन के कई उपकरण हैं परन्तु इनमें दण्ड सबसे अधिक अवांछनीय है। अतः मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार बालकों को अनुशासित करने के लिए दण्ड का उपयोग कम से कम किया जाना चाहिए।
- ❖ शिक्षकों को चाहिए कि अनुशासन में पक्षपात तथा जातियता से काम न लें, क्योंकि इससे कुछ विद्यार्थियों को मानसिक रूप से अस्वस्थ होने का मौका मिल सकता है।
- ❖ विद्यार्थियों को अध्ययन में व्यस्त रखना चाहिए ताकि वे वर्ग के भीतर कोई अवांछनीय व्यवहार न कर सकें। अवकाश के समय में भी उन्हें खेलकूद, ड्रामा, वाद–विवाद, प्रोजेक्ट आदि पाठ्येत्तर क्रियाओं में व्यस्त रखा जाय ताकि उन्हें अनुशासनहीन व्यवहार करने का अवसर न मिल सके।
- ❖ विद्यालय में अनुशासन समिति होना चाहिए, जिसमें विद्यार्थियों का प्रतिनिधि भी हो। इससे यह लाभ होगा कि विद्यार्थियों की वास्तविक स्थिति को समझने में शिक्षकों तथा अधिकारियों को सुविधा होगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक, पाठ्यक्रम तथा विद्यालय अनुशासन की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

अतः स्पष्ट है कि विद्यार्थियों का मानसिक रूप से स्वस्थ रहना उनके लिए, शिक्षकों के लिए एवं

शिक्षण संस्थानों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। विद्यार्थियों का मानसिक रूप से स्वस्थ रहना उनके माता–पिता, अभिभावकों, शिक्षकों, विद्यालय प्रबंधकों एवं पारिवारिक वातावरण तथा विद्यालयीन वातावरण पर निर्भर करता है। आज के परिवर्तनशील समाज में विद्यार्थियों का मानसिक रूप से स्वस्थ रहना अत्यधिक महत्वपूर्ण है ताकि वह विद्यार्थी समाज का एक जिम्मेदार नागरिक बन सके और राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान सके।

संदर्भ

- Ryan, W. C. and Skinners, C. E. : Elementary Educational Psychology. Prentice Hall, Newyork, 1915.
- गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, अलका : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. इलाहबाद : शारदा पुस्तक मंदिर, 2001.
- पाल, हंसराज : प्रगत शिक्षा मनोविज्ञान. दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 2006.
- पाल, हंसराज एवं पाल, आशा : अधिगम निर्योग्यों की शिक्षा दिल्ली : शिप्रा प्रकाशन, 2007.
- माथुर, एस. एस. : शिक्षा मनोविज्ञान. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर, 2002.
- सिंह, ए. के. : उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान. नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 2005.
- सुलेमान, एम. : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास,, 2007.
- शर्मा, आर. एन. व शर्मा, आर. : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. नई दिल्ली, अटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2004.

❍❍❍❍❍

साक्षर भारत

साक्षर–भारत, साक्षर–भारत ।
साक्षरता की नई इबारत ।।

निरक्षरता का अंधेरा, दूर भगाने को तैयार,
चारो ओर होगी खुशहाली, रोज मनायेंगे त्यौहार,
चुन–चुन अक्षर की ईंटों से, बनाएगें हम नई इमारत।

साक्षर–भारत, साक्षर–भारत ।
साक्षरता की नई इबारत ।।

महिला के पढ़–लिख जाने से, सुधरेंगे अब दो संसार,
शिक्षित–स्वस्थ संताने होगीं, स्वरोजगारी होंगे कई हजार,
अपने–अपने अधिकारों की, मिलकर करेंगे खूब हिफाजत।

साक्षर–भारत, साक्षर–भारत ।
साक्षरता की नई इबारत ।।

गांव–गांव और शहर–शहर में, छा जाएगी हरियाली,
खेती–धंधा करने वाले, कभी न बैठेंगे अब खाली,
निरक्षरता के कारण अब, बौनी न होगी विरासत।

साक्षर–भारत, साक्षर–भारत ।
साक्षरता की नई इबारत ।।

– दुष्यंत कुमार सोनी

○○○○○

असहमति की शिकार शिक्षा

–बी. संजय

आधुनिक व्यवस्था संरचना के आलोक में यदि देखा जाय तो भारत ही नहीं दुनियां के सभी देशों में शिक्षा के सामान्यतः तीन स्टेकहोल्डर्स हैं – समाज, सरकार और व्यावसायिक समूह। यदि यह देखा जाय कि किसी देश विशेष में शिक्षा के मौजूदा हालात और उसके विकास की दिशा की स्थिति क्या है तो यह सम्भवतः शिक्षा के उपरोक्त तीनों स्टेकहोल्डर्स के आपसी संबंधों पर ही निर्भर होगा। इन तीनों घटकों के आपसी सम्बन्ध सीधे तौर पर तो यह कहते हैं कि समाज आधार है और शेष दो परजीवी जो समाज पर आश्रित हैं। पर यदि महत्व के मद्देनजर देखा जाय तो स्थिति उल्टे पिरामिड की तरह है जहां न्यूनतम महत्व समाज को मिलता है। शिक्षा से व्यवसायी समूहों का सरोकार कैसा है यह कतिपय गैर–सरकारी संस्थाओं अथवा धार्मिक ट्रस्टों द्वारा संचालित शैक्षिक संस्थानों के आर्थिक पक्ष पर निगाह डालते ही स्पष्ट हो जाता है। अक्सर ये भी सम्पूर्णरूप से व्यावसायिकता में डूबे नजर आते हैं फिर पूर्णरूप से व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा संचालित शैक्षिक प्रयासों की तो बात हीं क्या है? इस बात की पुष्टि सर्वोच्च न्यायालय के एक अवकाशकालीन पीठ द्वारा 20 मई, 2010 को दिये गये निर्णय से भी होती है। यह पीठ न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी के नेतृत्व में थी जिसके अन्य सदस्य न्यायमूर्ति सी. के. प्रसाद थे। पीठ ने महाराष्ट्र में 2010–11 के लिए कुछ आयुर्वेदिक कालेजों की मंजूरी देने पर सैंट्रल काउंसिल ऑफ इंडियन मेडिसिन को फटकार लगाते हुए कहा – शिक्षा व्यवसाय बन गयी है। सच कहा जाय तो यह व्यवसाय से भी कुछ ज्यादा बन गयी है। पीठ ने ध्यान दिलाया कि गत एक वर्ष में महाराष्ट्र में 464 बी.एड. कॉलेज खोले गये हैं तथा केवल हरियाणा में इसी वर्ष 25 इंजीनियरिग कॉलेज खोले गये। स्वाभाविक है व्यावसायिक समूह शिक्षा के संरचना विस्तार में जितना भी हाथ बटाते हैं उसका उद्देश्य समाज का विकास कम, किन्तु कारपोरेट सोशल रेस्पोंसिबिलिटीज जैसी आधुनिक अवधाराणाओं के नाम पर समाज का परोक्ष दोहन करना अधिक होता है।

अगले चरण में सरकार की बारी आती है। हमारे देश में यदि साफतौर पर कहा जाय तो सरकार की कोई जिम्मेवारी होती ही नहीं। यदि किसी की जिम्मेवारी होती है तो वह शासन पर काबिज राजनैतिक दल अथवा दलों के समूह की होती है। पर इनसे जबाव मांगने के लिए जनता के पास कोई प्रभावकारी व्यवस्था नहीं है। अधिक से अधिक जनता यह कर सकती है कि पांच साल बाद आने वाले चुनावों में सम्बद्ध दलों के कार्यकलापों से संतुष्ट अथवा असंतुष्ट हो उनके विजय या पराजय की पुनः भागीदार हो जाय।

अब बारी समाज की आती है। भारतीय समाज की स्थिति जटिल है। कुल आबादी का एक बड़ा हिस्सा असाक्षर है। सन् 2001 की जनगणना के आधार पर देश में 11,06,27,745 अर्थात 24.74 प्रतिशत पुरूष एवं 19,34,98,389 अर्थात 46.33 प्रतिशत महिलाएं असाक्षर हैं। यदि साक्षर आबादी को छोड़ दें तो शेष पढ़े लिखों की स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं है। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त सभी बच्चे सहजता से माध्यमिक तक की शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते। सन् 2004– 05 के दौरान मानव संसाधन विकास मंत्रालय के द्वारा प्रदत्त आंकड़ों के अनुसार देश में 5,12,45,426 छात्रों का कक्षा आठवीं में नामांकन हुआ था, जबकि वर्ष 2007–08 में माध्यमिक में कुल नामांकन 2,82,22,454 था मतलब यह कि 2,30,22,972 छात्रों का नामांकन ही नहीं हो पाया जो आठवीं कक्षा के नामांकन का 44.92 प्रतिशत था, जिन्होंने माध्यमिक पास कर ली वे अपनी रूचि एवं प्रकृति के अनुसार उच्च माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त कर सकते हों ऐसा भी नहीं है। माध्यमिक के बाद यदि कुछ छात्र उच्च शिक्षा के मार्ग को छोड़ जीविकोपार्जन की बात सोचें तो सोच सकते हैं क्योंकि व्यावसायिक शिक्षा की कल्पना है यहां। पर उस क्षेत्र

में भी स्थान (सीट) अत्यन्त सीमित हैं। सन् 2009–10 के आंकड़ों की यदि बात करें तो देश में व्यावसायिक संरचना जिसके अन्तर्गत इंजीनियरिंग, तकनीकी, आर्किटैक्चर, एमसीए, एमबीए, पीजीडीए, एप्लाइड आर्टस एण्ड क्राफ्ट, होटल मैनेजमेंट आदि आते हैं, में कुल दाखिला क्षमता मात्र 19,17,899 थी। दुविधा यहीं समाप्त नहीं होती। जिन्हें हम उच्च शिक्षित मानते हैं उन्हें प्रदत्त शिक्षा का स्तर भी आगे चलकर व्यवहारिकता (व्यावसायिकता) की कसौटी पर लड़खड़ा जाता है। व्यापार, व्यवसाय, नौकरियों अथवा जीविकोपार्जन के अन्य संसाधनों की मांग और हमारे उच्च शिक्षित छात्रों की योग्यता में पर्याप्त अन्तर का उल्लेख बार–बार होता रहा है। कुल मिलाकर यह तो स्पष्ट है कि समाज की शैक्षिक स्थिति संतोषजनक नहीं है। विद्वानों का यह विश्वास कि एक बार शत–प्रतिशत स्थाई साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त कर लेने पर शैक्षिक समाज निर्माण करने और उसे उत्तरोत्तर विकास की दिशा में संचालित करने की प्रक्रिया सुगम हो जायेगी, परन्तु भारत में वास्तविकता दूर नजर आ रही है।

बावजूद इन सबके मौजूदा वर्ष सहित बीते कुछ वर्षों में किए गए शैक्षिक प्रयासों पर गौर करें तो पाते हैं कि सरकार सहित भारतीय समाज भी शैक्षिक सक्रियता के दौर से गुजर रहा है। 27 अगस्त 2009 को बच्चों के मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम की घोषणा भारत के राष्ट्रीय राजपत्र में प्रकाशित हो गयी। 1 अप्रेल, 2010 से यह अधिकार मौलिक अधिकारों में शामिल हो गया। सरकार तथा समाज सभी का मानना है कि जिस परिवार की महिला शिक्षित हो जाती है वह पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। इसी सिद्वांत के मद्देनजर देश के 365 जिलों जहां महिला साक्षरता दर 50 प्रतिशत से कम है के लिए मौजूदा सरकार ने अपने प्रतिनिधि कार्यक्रम में 8 सितम्बर, 2009 को साक्षर भारत कार्यक्रम की घोषणा की। इसके क्रियान्वयन हेतु ग्राम पंचायतों को माध्यम बनाया गया। इसके पूर्व आठवीं तक की शिक्षा प्राप्त बच्चे अपने घर से तकरीबन 5 किलोमीटर के अन्दर ही माध्यमिक तक की शिक्षा प्राप्त कर सकें और सन 2017 तक योग्य सभी बच्चों का माध्यमिक शिक्षा में दाखिला हो जाय इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 3 जनवरी, 2009 के अपने महत्वपूर्ण फैसले में कैबिनेट ने राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान को स्वीकृति प्रदान कर दी। ये सारे प्रयास निश्चित ही आने वाले वर्षों में देश में शिक्षा की बुनियाद को मजबूत करेंगे। पर इनके क्रियान्वयन की प्रक्रिया, इस हेतु आवश्यक धनराशि तथा पक्ष एवं विपक्ष के राजनैतिक दलों में सहमति के मद्देनजर गौर करें तो रास्ता आसान नहीं दिखता।

चूंकि शिक्षा का अधिकार अब हमारे देश में एक मौलिक अधिकार है, इसलिए आने वाले वर्षों में केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों एवं विभिन्न गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किये जाने वाले प्रयासों का प्रारूप इस अधिकार के आलोक में तय किया जायेगा। इन सभी का यह सामूहिक लक्ष्य होगा कि 6–14 आयुवर्ग के देश के सभी बच्चों को अविलम्ब प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की मुहिम से जोड़ दिया जाय। लक्ष्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। उपरोक्त अधिकार के तहत प्रदत्त शिक्षा की गुणवत्ता भी सुनिश्चित की जानी है। तात्पर्य यह है कि शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले सभी कारकों यथा विद्यालयों का आधारभूत ढ़ांचा, उनमें शिक्षक शिक्षार्थी का अनुमोदित अनुपात, जन सुविधाओं की व्यवस्था आदि को भी अपेक्षित स्तर तक पहुंचाने के लिए प्रयत्न करना होगा।

इस अपेक्षा के साथ मौजूदा प्राथमिक शिक्षा संबंधित तथ्यों पर यदि गौर किया जाय तो परिस्थितियां अत्यन्त गंभीर नजर आती हैं। आंकड़े बताते हैं कि देश के लगभग 4.17 लाख प्राथमिक विद्यालय, जो कुल प्राथमिक विद्यालयों के तकरीबन 54 प्रतिशत हैं, महज एक और अधिक से अधिक दो शिक्षकों के द्वारा संचालित किये जाते हैं। यदि अधिक से अधिक तीन शिक्षकों द्वारा संचालित विद्यालयों की बात करें तो यह संख्या 5.19 लाख अर्थात कुल प्राथमिक विद्यालयों के 71.5 प्रतिशत तक जाती है। और यह स्थिति तब है जबकि मौजूदा दशक में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों की नियुक्ति में अप्रत्याशित वृद्वि हुई है। स्वाभाविक है कि राज्य सरकारों सहित केन्द्र

सरकार के समक्ष भी विद्यालयों में संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुमोदन के अनुरूप शिक्षक शिक्षार्थी अनुपात को लागू करना और इस हेतु प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर शिक्षकों की व्यापक नियुक्ति एक बड़ी चुनौती होगी। इसके लिए पर्याप्त धनराशि मुहैया कराकर ही इन चुनौती से निजात पाया जा सकेगा।

ऐसे में केन्द्र सरकार सहित सभी राज्य सरकारों को दृढ़ता से इस मद में आवश्यक धनराशि उपलब्ध करानी होगी। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के सूत्रों के अनुसार अगले पांच वर्षों में शिक्षा के मौलिक अधिकार को लागू करने के लिए तकरीबन 1.78 लाख करोड़ रूपयों की आवश्यकता होगी। इन पांच वर्षों में प्रथम तीन वर्ष ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तथा शेष के दो वर्ष बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के अन्तर्गत आयेंगे। सरकार का मानना है कि इसमें से 50 हजार करोड़ रूपये ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के तहत सर्व शिक्षा अभियान फंड से मुहैया कराया जायेगा और 60 हजार करोड़ रूपये बारहवीं पंचवर्षीय योजना के तहत इसी मद से मुहैया कराया जायेगा। यह राशि कुल मिलाकर एक लाख दस हजार करोड़ ही हो पाती। स्पष्ट है कि आगामी पांच वर्षों में केन्द्र एवं राज्य सरकारों को सम्मिलित रूप से शेष 68 हजार करोड़ रूपयों की अतिरिक्त व्यवस्था करनी होंगी। कतिपय प्रगतिशील राज्यों से ऐसे मदद की बात मान भी ली जाये तो पिछड़े राज्यों एवं वहां के नीति नियंताओं की मानसिकता से यह तो कतई नहीं लगता कि वे इतनी बड़ी राशि इस मद में तत्काल निवेश कर पाएगें। उत्तर प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों ने तो पहले ही हाथ खड़े कर दिए हैं।

'साक्षर भारत' मौजूदा सरकार का प्रतिनिधि कार्यक्रम है। पर इसकी स्थिति भी संतोषजनक तो नहीं दिखती। शुरूआती घोषणाओं के अनुसार इस वर्ष जनवरी माह में ही लोक शिक्षा केन्द्रों के माध्यम से वास्तविक शिक्षण का कार्य प्रारम्भ हो जाना था। पर अब स्थिति ऐसी है कि गत एक जून को संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के द्वितीय पारी के एक साल पूरे होने के उपलक्ष्य में जब प्रधानमंत्री ने सरकार की उपलब्धियों को गिनाना प्रारम्भ किया तो बड़ी चालाकी से 'साक्षर भारत' के उल्लेख मात्र से भी कन्नी काट गये।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (आर.एम.एस.ए.) को आर्थिक मामलों की कैबिनेट समिति ने 3 जनवरी, 2009 को स्वीकृति प्रदान कर दी थी। पर इस दिशा में भी कोई हलचल नहीं दीख रही है। गौरतलब है कि सन् 2005–06 में देश के उच्च विद्यालयों में दाखिले का प्रतिशत महज 52.26 प्रतिशत तक पहुंचाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, जिसके लिए अनुमानित 63 लाख अतिरिक्त दाखिलों की सुविधा उपलब्ध करायी जानी है। इस दिशा में क्या प्रगति हो रही है इस पर सम्बन्धित अधिकारी मौन हैं।

बात इतनी ही नहीं है। हमारी शिक्षा व्यवस्था असहमति की शिकार दीखती है। और तो और यह असहमति वैचारिक कम राजनैतिक ज्यादा प्रतीत होता है। विविधताओं से भरे होने के कारण सभी समस्याओं का एक सा समाधान नहीं हो सकता। पर विकास के मौलिक कारकों पर विभेद हितकारी भी तो नहीं हो सकता। कौन नहीं जानता है कि राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अस्तित्व में आने के समय से ही शिक्षा को मौलिक अधिकार में बदलने की बात चली आ रही है। भारतीय संविधान की धारा 45 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि संविधान के लागू होने के दस वर्षों के अंदर ही 14 वर्ष तक के बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने को मौलिक अधिकार का दर्जा प्रदान किया जाएगा। आज इतने वर्षों बाद जब इस विधेयक को अमली जामा पहनाया गया तब राजनैतिक दलों अथवा कुछ राज्यों द्वारा यह कहकर इसका विरोध करना कि केन्द्र सरकार राज्यों पर अनावश्यक आर्थिक दबाव डाल रही है, उचित नहीं प्रतीत होता। विकास के इस पहल का कोई विरोध यदि राजनीति प्रेरित मान लिया जाए तो कोई गुनाह नहीं होगा। यही हालात विकास के कई अन्य पहलूओं के साथ भी प्रतिलक्षित होता है।

इन हालातों में तेज–तर्रार मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा ताबड़ तोड़ हस्ताक्षर की जा रही एम.ओ.यू. क्या कुछ कर पाएगी यह तो आने वाला समय ही बता पाएगा।

Rise and Fall of NGOs

– K.D. Gangrade

Voluntary Organisation or Nongovernmental Organisations have come to occupy an important place in India and the World. The spread of NGO activities in the country, as in many parts of the world, are manifold in a member of spheres and in a wide spectrum of programmes. In welfare programmes, development oriented initiatives, empowering women and weaker sections, protecting the rights of marginalized segments, protecting the environment, spreading literacy, education and specially adult-education, to name a few, the participation the NGO sector has been particularly impressive since independence of India. There is a high degree of diversity and heterogeneity in the activities as well. I have been studying the functions and working of NGOs for the last four decades. Based on my empirical study, I have developed a model of life-cycle of NGOs. There are five stages of the cycle.

The stages are: 1. Initiation, 2. Execution, 3. Expansion, 4. Consolation and 5. Decline-decay-renewal-rebirth.

Initiation begins with the effort to establish rapport, with individuates, leaders, groups, communities, representatives, organizations and institutions that would generate confidence among the people and earn acceptance in the community and the area of operation.

In the second stage, execution: voluntary or paid workers execute the programmes, schemes and projects. Workers help the people to identify their needs, assess the resources available (internally and externally), and mobilize resources to meet their needs. Programmes and activities are planned, designed, and implemented accordingly. The successful completion of the programmes encourages founder/s of the NOG/s to expand the activities of the organization or the agency. The expansion work is based on proper evaluation to prepare the organization and workers to cope with the increased work load. The orientation in this stage is mostly Missionary and all work with the missionary zeal.

Consolidation follows, workers consolidate the work by giving it an institutional shape. Physical structures and buildings are constructed. This is the stage at which there is a possibility for the activities to become programme oriented. The rigidity of the institutional norms and rules have negative effects on people's participation. The chances are greater for the misuse of funds, as there is normally regular flow of funds at this stage. The emphasis on this period is more as maintenance of institution (i.e. survival orientation). Displacement of goals - from people to programmes - is the result.

The chart given below will illustrate the cycle in details and orientation at each stage.

Life cycle of NGOs

Stages Institution	Steps Establishing rapport Generating confidence Getting acceptance	Orientation Missionary zeal in all workers.
Execution	Programme/s identification of needs or problems and planning of activities	Executive (Programmes)
Expansion	Evaluating effectiveness development of Infrastructure, Specialization, Increase of Work load.	Career (Expansion)
Consolidation	Stabilizing operations enforcing rulings serving organizational entity.	Institutional (stability)
Decline Decay Renewal/ Rebirth	Subjecting staff and people to rules survival alievating organization from people.	Survival (Maintenance)

The pattern of the lifecycle of an NGO depends on a number of factors. The interplay of changing societal concerns and priorities, fluctuating levels of available resources, and the entry and exit of the key person/s or personnel/s. Often the absence of a second line of leadership, uncertainty of resources, internal conflicts, the failure of organization to enlist popular participation, financial scarcity, misuse and misappropriation of funds and erosion of old virtue can influence the life cycle of an NGO. In the evolution of NGOs as the Third Sector, it is important to ensure that institutionalization (stability), process does not result in the creeping in of bureaucratic pathologies to preserve the institution rather than implementing and achieving the development goals.

In this connection it is advisable to follow the cardinal principle as aptly stated by Gandhi. "A public institution (NGO or voluntary organization) means an institution conducted with this approval, and from the funds, of the public. When such an institution ceases to have public support, it forfeits its right to exist." (M.K. Gandhi, An Autobiography, Navajivan Publishing House, Reprint 2001, Ahmedabad, p 165).

❍❍❍❍❍

हमारे लेखक

महेन्द्र कुमार वर्मा
रीडर एवं विभाग प्रमुख
शोध माध्यम एवं शिक्षा विभाग
स्वामी शुकदेवानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय
शाहजहांपुर (उ0प्र0)

डॉ. रमा त्यागी
प्राचार्या
एवं
एन. रोहेन मीतै
सह. प्राध्यापक
इन्स्टीटयूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज
कालेज ऑफ एज्यूकेशन, ग्वालियर
पोस्ट बॉक्स– 14, शिवपूरी लिंक रोड, ग्वालियर
(मध्य प्रदेश)

डा. सरिता पंवार
प्रवक्ता प्रौढ़ सतत् शिक्षा एवं प्रसार विभाग
हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय
श्रीनगर (गढ़वाल) – 246174
उत्तराखण्ड
मो.– 9411129660

डॉ. जितेन्द्र कुमार पाटीदार
प्राचार्या
एवं
कमल किशोर यादव
सह. प्राध्यापक
विद्यासागर शिक्षा महाविद्यालय,
भिचौली मर्दाना,
इन्दौर

दुष्यंत कुमार सोनी
सहायक कार्यक्रम अधिकारी
जन शिक्षण संस्थान
उमरिया (मध्यप्रदेश)

बी. संजय
सहायक सम्पादक
भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
नई दिल्ली – 110002

के.डी. गंगराडे
सुशीला भवन, 156, वैशाली
पीतमपुरा नई दिल्ली – 110088

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

कार्यकारिणी समिति

संरक्षक

प्रो. भवानीशंकर गर्ग

अध्यक्ष

श्री कैलाश चौधरी

उपाध्यक्ष

श्रीमती राजश्री बिस्वास
प्रो. ए.एच. खान
प्रो. अरूण मिश्रा
डा. एल. राजा
प्रो. एस.वाई. शाह

महासचिव

डॉ. मदन सिंह

कोषाध्यक्ष

डा. मनोहर सिंह राणावत

संयुक्त सचिव

श्री ए.एल. भार्गव

सह–सचिव

श्री सुधीर चटर्जी
श्री प्रफुल्ल नागर
डॉ. पी.ए. रेड्डी
डॉ. निर्मला नुवाल

सदस्य

श्रीमती इन्द्रा पुरोहित
सुश्री कुन्दा सुपेकर
श्रीमती सुरेखा खोत
प्रो. सुशीले गौडा
डॉ. मफतलाल पटेल
प्रो. वी. रेघु
डॉ. एस.एल. शर्मा
डॉ. ओ.पी.एम. त्रिपाठी

सहयोजित सदस्य

श्री एच.सी. पारीख
प्रो. सुरेन्द्र सिंह
सुश्री निशात फारूख़
श्री हरीश कुमार एस.
श्री सुरेश चन्द्र खण्डेलवाल

पोस्टल रजिस्ट्रेशन नं0 डी.एल.(सी)-01/1158/10-12
प्रौढ़ शिक्षा जून 2010, आर.एन.आई. 4551/57

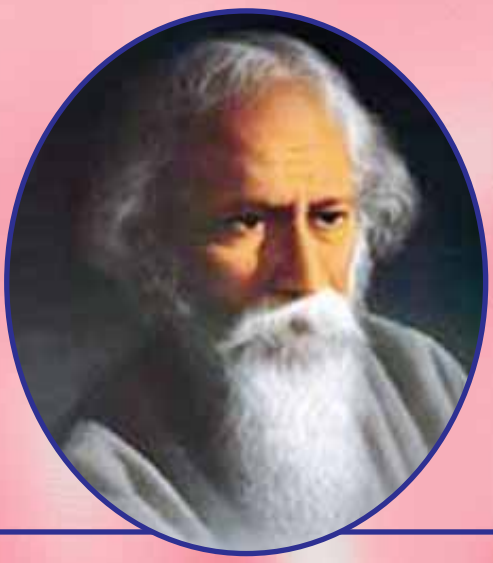

The highest education is that which does not merely give us information but makes our life in harmony with all existence.

-Rabindranath Tagore

स्वत्वधिकारी भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ के लिए महासचिव डा. मदन सिंह द्वारा 17–बी आई.पी. एस्टेट, नई दिल्ली–2 से प्रकाशित, सम्पादित और उनके द्वारा मैसर्स–ग्राफिक वर्ल्ड, 1686, कूचा दखिनी राय, दरियागंज, नई दिल्ली–2 से मुद्रित।

वर्ष 53 अंक 11

एक प्रति 10 रूपये
जून 2010

प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़, सतत एवं आजीवन शिक्षा जगत का मुख पत्र

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ